राष्ट्र निर्माता

लेखक
राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी एम० ए०, साहित्यरत्न

प्रकाशक
शिव प्रकाशन
आगरा।

प्रकाशक—
शिव प्रकाशन

द्वितीय संस्करण १९५९
मूल्य १।)

मुद्रक
सन्देश प्रेस, आगरा।

विषय सूची

पृष्ठ

प्रस्तावना

हमारे साहित्य में देश के महान पुरुषों की जीवनियों का बहुत ही अभाव है। ऐसे जीवन चरित्रों से राष्ट्र के नवयुवकों के चरित्र निर्माण में बड़ी सहायता मिलती है अतः आज जब कि हमारा देश स्वतन्त्र है इस बात को बड़ी आवश्यकता है कि जिन महापुरुषों ने देश को स्वतन्त्र किया है तथा आज भी जो राष्ट्र के कर्णधार हैं उनके जीवन की झांकी अपने नवयुवकों को कराई जाय जिससे उनको देश पर सब कुछ न्यौछावर कर देने की प्रेरणा मिले। इसी भावना से प्रेरित होकर मैंने यह पुस्तक लिखी है। यदि पाठकों ने इससे तनिक भी लाभ उठाया तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूंगा।

राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

राष्ट्र निर्माता

लेखक
राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी एम० ए०, साहित्यरत्न

प्रकाशक
शिव प्रकाशन
आगरा।

प्रकाशक—
शिव प्रकाशन
आगरा।

द्वितीय संस्करण १९५६
मूल्य १।)

मुद्रक
सन्देश प्रेस, आगरा।

विषय सूची

प्रस्तावना

हमारे साहित्य में देश के महान पुरुषों की जीवनियों का बहुत ही अभाव है। ऐसे जीवन चरित्रों से राष्ट्र के नवयुवकों के चरित्र निर्माण में बड़ी सहायता मिलती है अतः आज जब कि हमारा देश स्वतन्त्र है इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि जिन महापुरुषों ने देश को स्वतन्त्र किया है तथा आज भी जो राष्ट्र के कर्णधार हैं उनके जीवन की झांकी अपने नवयुवकों को कराई जाय जिससे उनको देश पर सब कुछ न्यौछावर कर देने की प्रेरणा मिले। इसी भावना से प्रेरित होकर मैंने यह पुस्तक लिखी है। यदि पाठकों ने इससे तनिक भी लाभ उठाया तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूंगा।

राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

: १ :

महात्मा गांधी--भारत की आत्मा

वंश परिचय तथा जन्म

महात्मा गांधी का वास्तविक नाम मोहनदास करमचन्द गांधी था। इनके पिताजी करमचन्द गांधी अथवा कबा गांधी पोरबन्दर में दीवान थे। बाद में राजस्थानी कोर्ट में सभासद रहे। इनके पिताजी के चार विवाह हुए थे। अन्तिम पत्नी का नाम पुतलीबाई था। इन्हीं पुतलीबाई के गर्भ से हमारे राष्ट्र पिता—श्री मोहनदास गांधी का जन्म हुआ था। ये अपने पिता के सबसे छोटे पुत्र थे। इनका जन्म आश्विन बदी १२ संवत् १६२५ अर्थात् २ अक्तूबर सन् १८६८ के दिन पोरबन्दर अथवा सुदामापुरी में हुआ था। यहाँ पर यह बता देना अनुपयुक्त न होगा कि गुजरात काठियावाड़ में पंसारी को गांधी कहते हैं, परन्तु इनकी तीन पुश्तें काठियावाड़ के भिन्न-भिन्न राज्यों में दीवानगीरी का काम करती आई थीं।

बाल्यकाल

पोरबन्दर की दीवानगीरी छोड़कर इनके पिताजी राजस्थानी कोर्ट के सभ्य होकर राजकोट आये। उस समय इनकी अवस्था

लगभग ७ वर्ष की होगी। यहां राजकोट में इनकी प्राथमिक शिक्षा हुई। हमारे चरित्रनायक पढ़ने लिखने में विशेष तेज न थे। इन्होंने स्वयं अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मेरी बुद्धि मन्द रही होगी, मेरी स्मरणशक्ति उन पंक्तियों के कच्चे पापड़ जैसी रही होगी, जो हम लड़के प्राय: गाया करते थे—

एकड़े एक पापड़ शेक,

पापड़ कच्चो, यारो—

इसमें मास्टर साहब का नाम और एक गाली रहती थी परन्तु इतना अवश्य था कि बड़ों के अवगुण न देखने की प्रवृत्ति इनमें प्रारम्भ से थी। यह अपने से बड़ों का आदर, उनकी आज्ञापालन तथा उन्हें प्रसन्न रखने का प्रयत्न सदैव ही किया करते थे। इस कारण अपने अध्यापकों के कृपापात्र बने रहे। अपने कोर्स के अतिरिक्त पुस्तकें पढ़ने का इन्हें चाव न था। यद्यपि पाठ याद करने में इनका मन नहीं लगता था, परन्तु इनकी सदैव इच्छा यही रहती थी कि पाठ याद होजाना चाहिए। मास्टर साहब का उलाहना इन्हें असह्य था। अपने इस जीवन में इनके ऊपर दो बातों का विशेष प्रभाव पड़ा। एक बार इन्होंने पिताजी द्वारा लाई हुई एक पुस्तक अचानक पढ़ डाली। उसका नाम था 'श्रवण की पितृभक्ति' उस पुस्तक के पढ़ने के बाद इनके हृदय में यह बात आई कि वह भी श्रवणकुमार की तरह अपने माता पिता की सेवा सुश्रुषा कर सकें। इसी बीच में वहां इन्होंने सत्य हरिश्चन्द्र नाटक देखा। यह इन्हें अत्यन्त प्रिय लगा। जो भी हो इनके अन्दर सेवा और सत्य के बीज, यहीं से जम गये थे। वे आगे जाकर पूर्णरूप से अंकुरित और पल्लवित हुए—यह फिर बतावेंगे। इस सम्बन्ध में महात्मा जी ने स्वयं लिखा है कि, 'मेरे हृदय में श्रवण और हरिश्चन्द्र आज भी

जीवित है। मैं चाहता हूँ कि आज भी यदि मैं उन नाटकों को पढ़ूं तो आँसू आए बिना नहीं रहेंगे।" खैर लगभग। १३ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हुआ। पत्नी के बारे में इनकी प्रारम्भ से यही इच्छा रहती थी कि वे दोनों एक मन दो तन बनकर रहें।

तीसरी-चौथी कक्षा पास कर चुकने के बाद यह मूर्ख विद्यार्थियों में न रहे। इन्हें दो तीन बार छात्र वृत्तियां भी मिलीं।

मांस-भक्षण, चोरी तथा अहिंसा का पहला पाठ

यह तो हम बता ही चुके हैं कि हमारे चरित्रनायक एक तरह से भोंदू लड़कों में से थे, साथ ही डरपोक भी थे। अपनी इस डरपोक प्रवृत्ति के कारण इन्हें अपनी पत्नी के सम्मुख विशेष लज्जा मालूम होती थी। इनके एक मित्र ने इनसे कहा कि मांस न खाने से ही आदमी डरपोक बन जाता है। वह मांस खाता है—इसी कारण भूत प्रेत, सांप आदि किसी से भी नहीं डरता। अंग्रेज भी मांस खाने के कारण ही हट्टे कट्टे हैं और हम पर राज्य करते हैं। हिन्दुस्तानी इसीलिये मुर्दा बने हुये हैं क्योंकि वे मांसाहार नहीं करते—आदि। कहने का तात्पर्य यह है कि उसकी बातों में आकर इन्होंने मांस खाना प्रारम्भ कर दिया। एक बार पास में पैसा न रहने से इन्होंने घर में चोरी की। उस चोरी से इनके मन में ग्लानि हुई। इन्हें अपने आप मन में बड़ा पश्चात्ताप हुआ। फलतः इन्होंने पिता जी से एक पत्र द्वारा क्षमा याचना की। पत्र पढ़ते-पढ़ते इनके पिताजी ने अपनी आंखें मूंद ली और रोने लगे। साथ ही चरित्रनायक भी रोते रहे। इस पितृ वात्सल्य ने इन्हें बींध डाला। यह मानों इनके लिए अहिंसा की प्रथम शिक्षा थी। इस घटना के बारे में इन्होंने स्वयं लिखा है कि, "इस मोतीबिन्दु के प्रेमबाण ने मुझे बींध डाला। मैं शुद्ध हो गया।

इस प्रेम को तो वही परख सकता है जिसे उसका अनुभव हुआ हो—

रामबाण बाग्यां रे होय ते जाणे (प्रेम-बाण से जो बिंधा हो वही उसके प्रभाव को जान सकता है) वास्तव में जब ऐसी अहिंसा व्यापक रूप धारण कर ले, तो उसके प्रभाव से कौन अलिप्त रह सकता है। ऐसी व्यापक अहिंसा के बल को नापना सहज नहीं।

विवाह

मोहनदास करमचन्द गांधी का विवाह केवल १३ वर्ष की उम्र में हो गया था। छोटी उम्र में विवाह होने के बाद इनके ऊपर क्या प्रभाव पड़ा था, इसका दिग्दर्शन हमारे चरित्रनायक ने स्वयं अपनी कहानी में कराया है। इन्होंने इस सम्बन्ध में ये शब्द लिखे हैं, "यह लिखते हुए मेरे हृदयको बड़ी व्यथा होती है कि १३ वर्ष की उम्रमें मेरा विवाह हुआ। आज मैं अपनी आंखों के सामने १२-१३ वर्ष के बच्चों को देखता हूँ, और जब मुझे अपने विवाह का स्मरण हो आता है, तब मुझे अपने पर दया आने लगती है और उन बच्चों को इस बात के लिये बधाई देने की इच्छा होती है कि वे मेरी हालत से अब तक बचे हुए हैं। तेरह साल की उम्र में हुए मेरे विवाह के समर्थन में एक भी नैतिक दलील मेरे दिमाग में नहीं आती'..........'विद्याध्ययन तथा गृहस्थाश्रम भारतवर्ष में ही एक साथ सम्भव हैं। अस्तु।

बैरिस्ट्री

होते हवाते इन्होंने एण्ट्रेंस की परीक्षा पास की और इनको विलायत भेजने की तैयारियां हुईं। आप आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व हिन्दू समाज के कायरपन का सहज ही अनुमान कर सकते हैं। उस

के जाति-बान्धवों ने भारी विरोध किया। परन्तु अन्त में १४ वर्ष की अवस्था में आपने विलायत के लिये प्रस्थान किया। यह सन् १८८८ के सितम्बर मास में लन्दन पहुँचे। यहां पर एक विशेष बात का उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा। विलायत जाते समय इनकी माताजी ने यह वचन ले लिये थे कि वह जैन धर्म की प्रतिज्ञा का पूर्ण निर्वाह करेंगे—अर्थात् न तो कभी मदिरा—पान करेंगे, न कभी मांस भक्षण करेंगे और न कभी भूल कर भी किसी स्त्री के साथ सह-वास ही करेंगे! यह कहना अनुचित न होगा कि इन्होंने इन तीनों वचनों का अक्षरशः, अक्षरशः ही नहीं, बल्कि मनसा वाचा कर्मणा सब तरह से ही पूर्ण पालन किया।

विलायत पहुँचने पर कुछ प्रारम्भ के दिन इन्होंने एक तरह से व्यर्थ ही गंवाए। इन दिनों यह बराबर अँग्रेज बहादुर बनने की चेष्टा में संलग्न रहे। ये प्रारम्भिक महीने एक तरह से अनिश्चितता तथा आत्म भ्रान्ति के थे। इनके विषय में इन्होंने स्वयं लिखा है "Wasted a lot of time trying to become an English man"! परन्तु यह शीघ्र ही अपने निश्चित जीवन में बैठ गये और सतत परिश्रम के साथ एक नियमित एवं संयमित जीवन व्यतीत करने लगे। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि उनका कल्याण हिंदू धर्म में ही है। इन्हीं दिनों इन्हें श्रीभगवद् गीता से साक्षात्कार हुआ। यहीं पर इन्हें यह प्रतीत हुआ कि भगवद् गीता ही मनुष्य को शान्ति दे सकती है, वही अन्धकार की घटा घिरी होने पर मंगल ज्योति का मार्ग बताती है। भगवत्गीता वास्तव में वह शक्ति है जो दुःखित हृदय में मंगलाशा का संचार कर देती है।

गीता के सम्बन्ध में इनके कुछ विचार

इन्होंने सबसे पहले एडविन आर्नल्ड के पद्यानुवाद से

गीता पढ़ी थी। बाद में गीता पर 'अनासक्तियोग' करके स्वयं भी एक टीका लिखी। गीता के सम्बन्ध में महात्माजी के ये शब्द स्मरणीय हैं—"गीता के लिये ही मैंने संस्कृत पढ़ी। आज के दिन गीता मेरे लिये न केवल कुरान, अथवा बाइबिल ही है, बल्कि वह मेरे लिये उससे कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी वस्तु है—वह मेरी माता है। मेरी माँ मुझे बचपन में ही छोड़ कर चली गई थीं। परन्तु गीता ने सदैव के लिये उनके रिक्त स्थान की पूर्ति कर दी। गीता न तो परिवर्तनशील है और न कभी धोखा देने वाली—आप हर घड़ी उस पर भरोसा कर सकते हैं। मैं जब कभी किसी भी विपदा अथवा कठिनाई में पड़ जाता हूं, तब उसी की गोद में जाकर शरण लेता हूँ—(ठीक उसी तरह जिस तरह चोट लग जाने अथवा भूख लगने पर बच्चा अपनी माता की गोद में लेट जाता है)।"

अनासक्तियोग में भी इन्होंने इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं—। गीता हमारे लिये आध्यात्मिक निदान-ग्रन्थ है। उसके अनुसार आचरणमें निष्फलता नित्य आती है पर वह निष्फलता हमारा प्रयत्न रहते हुये है। इस निष्फलता में सफलता की फूटती हुई किरणों की झलक दिखाई देती है। यह नन्हा सा जनसमुदाय जिस अर्थ को आचरण में परिणत करने का प्रयत्न करता है वह अर्थ इस अनुवाद में है।

विलायत से वापिस

जिस समय यह विलायत में ही थे उन्हीं दिनों इनकी माताजी परलोक गामिनी हो चुकी थीं। सन १८९१ में यह विलायत से बैरिस्ट्री की परीक्षा पास करके भारतवर्ष लौटे। घर आते समय अपनी माताजी की स्मृति इन्हें दुखी कर देती थी।

भारतवर्ष आने पर बम्बई के बड़े हाईकोर्ट में इन्होंने बैरिस्ट्री

शुरू की। यहां भी यह इस बात का विचार रखते थे कि वह झूठा मुकद्मा लड़ाकर अन्याय के पक्ष का कभी समर्थन न करें। अन्तोतगत्वा वकालत को बेईमानी का धंधा समझ कर इन्होंने बैरिस्ट्री करना छोड़ दिया।

इस बीच में यह अन्य अनेक महानुभावों के सम्पर्क में आये। इनके ऊपर सबसे अधिक प्रभाव डालने वाले दो व्यक्ति थे—दादाभाई नौरोजी तथा प्रोफेसर गोखले। उनके प्रभाव से इनके अन्त:करण की वे भावनायें जागृत हो पड़ी जिनके कारण यह अपने जीवन का उद्देश्य निश्चित कर सके थे। एक तरह से दादाभाई नौरोजी ही भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के जन्मदाता थे। उन्हीं ने गांधी जी को पहिला पाठ अहिंसा का पढ़ाया था उनकी नवयुवकोचित अधीरता का उन्नयन करने में दादाभाई का ही प्रयास निहित है।

दक्षिण अफ्रीका और गांधीजी

सन् १८६०—६१ में लगभग १५०००० भारतवासी दक्षिण अफ्रीका में विशेष कर नेटाल में जाकर बस गये थे। सफेद चमड़ी वाले विदेशियों को यह सहन न था। उनकी सरकार ने यह चाहा कि एशिया वालों का आना सर्वथा बन्द हो और जो लोग आगये हैं, वे यहां से चले जावें। फलत: वहां की सरकार ने भारतवासियों को तरह तरह से सताना प्रारम्भ कर दिया, उन पर अनेक अवैधानिक कर लगा दिये गये, पुलिस उन पर तरह तरह के अत्याचार करती थी। इन अत्याचारों में तरह तरह के अपमानों से लेकर उनके माल तथा जमीन जायदाद आदि का लूट लेना जैसे अमानुषीकृत्य सम्मिलित थे। इस तरह श्वेत सभ्यता काले भारतवासियों के सन्मुख नंगी नाच रही थी। गांधीजी उस समय वहीं थे।

सन् १८९३ में किसी आवश्यक काय से गांधीजी प्रटोरिया (Pretora) गये। रास्ते में इन्हें कई जगह अपमानित होना पड़ा। इन सबको व्यौरेवार देने का न तो यहाँ स्थान ही है और न उसकी आवश्यकता ही प्रतीत होती है। हम केवल इतना कहकर ही अपना काम चलाते हैं कि इन्हें कभी होटलों से निकाल दिया जाता था; तो कभी रेलों से धकेल दिया जाता था कभी कोई इनमें ठोकरें लगा देता था। इंगलैण्ड और यूरोप के सभ्य निवासी यहां आकर गवर्नर बन गये थे। गांधी जी को यह बात परेशान किये हुए थी। इङ्गलैण्ड में उनके साथ अत्यन्त शिष्टता पूर्ण एवं सुसंस्कृत व्यवहार होता था परन्तु यहां लीला ही निराली थी। जहां एक ओर वे विलायत में अनेक अभिन्न हृदय मित्र बनाकर लौटे थे वहां दूसरी ओर अफ्रीका में इन्हें श्वेत शत्रु ही दिखाई देते थे। यहाँ पर भारतवासी पहले तो परदेशी थे फिर अव्यवस्थित। न तो उनके पास विरोध करने का साहस ही था और न साधन एवं शक्ति। इन साधन विहीन भारतवासियों का का कोई भी सहारा नहीं था। व एकदम निरुपाय थे। सम्भवत: गांधीजी भी ऊबकर भारतवर्ष लौट आये होते परन्तु चाकरी के बंधनों के कारण वहां १२ महीने तक रहना अनिवार्य था। बस परमात्मा की इच्छा, इन्होंने आत्म-संयम का अभ्यास कर डाला! बस इन्होंने निर्णय कर लिया कि दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतियों की लड़ाई आज से उनकी भी लड़ाई होगी। बस क्या था, वह उसी में जी जान से जुट गये।

यह तो पाठक जानते ही हैं कि गांधीजी बैरिस्टर थे। उनका सबसे पहिला काम यह था कि उन्होंने उस समय बनाये क़ानून को नियम विरुद्ध अवैधानिक) सिद्ध किया। फिर बाद मे अहिंसात्मक असहयोग का आन्दोलन छेड़ दिया। वे कभी किसी कारखाने में हड़ताल

कराते, तो कभी कोई संस्था स्थापित कर लेते थे। फल स्वरूप इन्हें कई बार जेल भेजा गया। परन्तु इन अत्याचारों के कारण इनके साहस में कोई अन्तर नहीं आया। इसके विपरीत ज्यों-ज्यों अत्याचार होते गये, त्यों-त्यों इनका संकल्प अधिक दृढ़ होता गया। इसी तरह २० वर्ष बीत गये।

गांधी जी की सेवाएं एक तरह से निष्काम थीं। उनकी कहीं भी कोई कमी नहीं थी। इधर शासकों का विरोध भी बढ़ता जा रहा था। परन्तु गांधी जी अपने मार्ग में अडिग थे। इस प्रकार का सत्याग्रह तत्त्वज्ञान विशुद्ध भारतीय संस्कृति के अनुकूल था। वह विशुद्ध भारतीय संस्कृति के मूल जीवन की शुद्धता एवं नैतिकता से जन्म लेता है। इस नीति का उन्होंने व्यापक प्रयोग किया और व्यक्ति गत साधना के जीवन से ऊपर उठकर विश्व के राजमार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया। दक्षिण अफ्रीका में की गई बर्बर हिंसा के बदले में इन्होंने सन् १९०८ में हिन्द स्वराज्य करके छोटी सी पुस्तक लिखी। यह पुस्तक आगे जाकर भारत वर्ष में होमरूल आन्दोलन का प्राण बनी थी।

सन् १९०७ से लेकर सन् १९१४ तक के समय में इनका संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। बड़े-बड़े अंग्रेजों का विरोध होते हुए भी दक्षिण अफ्रीका सरकार ने जल्दी में सन् १९०६ में एक कानून पास कर दिया। उसके बन जाने से इन्होंने अपने असहयोग आन्दोलन का क्षेत्र और भी बढ़ा दिया। अब इनके साथ केवल भारतवासी ही नहीं बल्कि चीन वाले भी आ गये थे। हजारों की तादाद में आदमी जेलों में भरे जाने लगे। जब जेलों में जगह न रही, तो, उन्हें खदानों के गड्ढों में फेंका जाने लगा। परन्तु संग्राम जारी था!

दक्षिण अफ्रीका के इन अत्याचारों ने भारतीय जनता को क्षुब्ध कर दिया था। फलतः उस समय के वाइसराय लार्ड हार्डिंज ने सरकारी तौर पर दक्षिण अफ्रीका की सरकार से शिकायत की। जनरल स्मट्स (जो आज भी जीवित हैं) भारतवासियों के भयंकर विरोधी थे। परन्तु कोई क्या करता? आखिर सत्य और न्याय की जड़ हरी है। सन् १६१४ में तीन—पाउण्ड—पोल—टैक्स क़ानून का अन्त हुआ और नैटाल में बसने के लिये सब भारतवासियों को स्वतन्त्रता दे दी गई। २७ वर्ष के अबाध एवं अटूट त्याग तथा कष्टसहिष्णुता के बाद अन्त में जाकर विजय हुई। सबको गांधीजी की सफलता पर आश्चर्य था। दक्षिण अफ्रीका के अत्याचार गांधी जी का कुछ भी न बिगाड़ सके—ठीक उसी तरह जिस तरह बलशाही रोमराज्य की सामन्तशाही को प्रारम्भिक एवं बलहीन ईसाइयों का खोज मिटाने के प्रयत्न में स्वयंम ही नतमस्तक होना पड़ा था। यहां यह बता कर कि कभी-कभी शांत नीति के कारण, गांधी जी को अपने देश-वासियों के कोप का भी भाजन होना पड़ता था, हम अब इस प्रसंग को समाप्त करते हैं।

दक्षिण अफ्रीका से वापिस

सन् १६१४ में महात्मा जी जब दक्षिण अफ्रीका से लौटे, उस समय इनको एक सम्भावित नेता की दृष्टि से देखा जाने लगा था। राष्ट्रीय आन्दोलन तो बहुत दिनों से चला आता था, परन्तु अब तो यहां के निवासी गांधी जी की ओर नेतृत्व के लिये देखने लग गये। दक्षिण अफ्रीका में अहिंसा की सफलता के कारण गांधी का अहिंसा में विश्वास दृढ़ हो गया था। इस समय वे इगलैण्ड तथा अंग्रेजों के विरोधी नहीं थे। इन्होंने यह निश्चय किया कि पहिले भारतवर्ष की परिस्थितियों का अच्छी तरह से अध्ययन कर लेना चाहिये।

गांधी जी का सत्य

सन् १६१४—१६ वाले महायुद्ध में इन्होंने यही निर्णय किया कि अंग्रेजों की सहायता करने में ही हित है। फलतः सन् १६१४ में वे स्वयंसेवकों की व्यवस्था करने के सिलसिले में स्वयं विलायत गये थे। सन् १६१६ तक उनके ये ही विचार थे। वास्तविक बात तो यह है कि सन् १६१६ में एक गांधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग नहीं लिया था। लड़ाई के दिनों में इन्होंने पल्टन के लिए बड़ी तत्परता के साथ रंगरूटों की भर्ती करवाई। बाद में जब रौलट एक्ट बना, जलियां वाले बाग का हत्याकाण्ड हुआ, तब अंग्रेजों के प्रति इनका विश्वास जाता रहा। बस यह समर में कूद पड़े। उस समय तिलक महाराज भी मैदान में थे। इस सम्बन्ध में हम केवल एक बात बता कर आगे चलते हैं। तिलक और गांधी में राजनीतिक विचार धारा के सम्बन्ध में कुछ मतभेद हो गया था—यद्यपि दोनों ही एक दूसरे को समुचित सम्मान की दृष्टि से देखते थे। तिलक महाराज का विचार था कि देश का हित सर्वोपरि है। देश की स्वतन्त्रता सत्य से भी ऊपर है। स्वतन्त्रता-संग्राम में सत्य की हत्या करके अगर विजय मिलती हो, तो सत्य की हत्या करने में कोई पाप नहीं। परन्तु गांधीजी के विचार भिन्न थे। उनके विचार से सत्य सर्वोपरि था। अगर सत्य की हत्या करके स्वतन्त्रता मिलती है तो ऐसी स्वतन्त्रता गांधीजी के लिये व्यर्थ थी। वे इसी सिद्धान्त पर आज तक अडिग बने रहे। उनके विचार से व्यक्ति से बड़ा देश है और देश से बड़ा सत्य है, जिसका हम सबको अनुभव करना है। सत्य के बिना स्वतन्त्रता रह ही नहीं सकती। सत्य को ठुकराना परमात्मा के अस्तित्व को न मानना है। सत्य के सम्बन्ध मे उनके ये विचार कोई बाद में नहीं आये थे। वे प्रारम्भ से सत्य के अनन्य उपासक थे। बहुत दिन पहिले से वह इन विचारों का प्रचार करने लग गये थे।

'मेरी गीता मुझसे कहती है कि शुभ कार्य का फल कभी अशुभ नहीं हो सकता।" (यंग इण्डिया सन १९२५) (प्रत्येक देश की धार्मिक पुस्तकों में सत्य का प्रतिपादन किया गया है सन. १९२४, यंगइण्डिया) "मैं जानता हूँ परमात्मा सत्य है। .....भारतवर्ष की स्वतन्त्रता सत्य पर समाधारित होंने के लिये कष्टप्रद नहीं हो सकती।" (यंग इण्डिया सन् १९२४)।

इसी तरह एक बार यरवदा जेल में कहा था कि "सत्य अनन्त है—क्योंकि वह परमात्मा का प्रतिरूप है। यही कारण है कि सत्य के द्वारा मिलने वाला आनन्द भी अक्षय ही होता है। सत्य में मेरा विश्वास दिनोंदिन दृढ़ होता जा रहा है।" इत्यादि।

गांधी जी की अहिंसा

जिस तरह गांधी जी के लिये जगत में सर्वत्र व्याप्त तथ्य का नाम सत्य था, ठीक उसी तरह उनके लिये संसार के प्रति व्यवहार का नाम अहिंसा था। अहिंसा का अर्थ है प्रेम। गाँधी जी का कहना था कि प्यार के बदले में विद्रोह तो मिल ही नहीं सकता। इसी प्रेम पूर्ण व्यवहार का विकास करना उनके जीवन का उद्देश्य रहा था। उसी का परिणाम था कि जब उनके गोली लगी थी, तब भी उनके मुख से हे राम! ही निकला था। अपनी हत्या करने वाले के प्रति भी उनके अन्दर विद्वेष के भाव नहीं आ पाए थे। उनके लिए सारा संसार राममय था। इसीलिए वह सबसे प्रेम करते थे। यही उनकी अहिंसा थी।

गाँधीजी ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि मैं एक गाना गाया करता था—जो सप्तम एडवर्ड के राज्यारोहण के अवसर पर बनाया गया था। उसकी दो पंक्तियां मुझे अखरीं—

उसके शत्रुओं का नाश कर, उनकी चालों को विफल कर। मैंने यह कठिनाई डा० बूथ के सामने पेश की। उन्होंने भी स्वीकार किया

कि अहिंसावादी को यह गाना शोभा नहीं देता। जिन्हें हम शत्रु कहते हैं, वे दग़ाबाजी ही करते हैं यह हम कैसे मान लें। यह हम कैसे कह सकते हैं कि हमने जिन्हें शत्रु मान लिया है वे सब बुरे ही हैं। डा० बूथ भी मेरे इन विचारों से सहमत थे। कहना न होगा कि गांधी जी ने आजन्म अपनी इस अहिंसा का निर्वाह किया!

रौलेट एक्ट बनने के समय से वे समराङ्गण में आए और प्रारम्भ से अन्त तक यही प्रयत्न करते रहे कि राष्ट्रीय-आन्दोलन में, स्वतन्त्रता संग्राम में हिंसा न आने पावे!

गीता की टिप्पणी में आपने लिखा है कि "महाभारतकार ने भौतिक युद्ध की आवश्यकता नहीं, उसकी निरर्थकता सिद्ध की है। विजेता से रुदन कराया है, पश्चाताप कराया है और दुःख के सिवाय और कुछ नहीं रहने दिया। आगे चलकर वे कहते हैं कि बिना ईश्वर रूप हुए मुझको चैन नहीं। ईश्वर रूप होने के प्रयत्न का ही नाम सच्चा और एकमात्र पुरुषार्थ है·······इत्यादि।"

गांधीजी के यह विचार बहुत पुराने थे। सन् १९२९ में जिस समय उन्होंने गीता पर यह 'अनासक्ति योग' लिखा था, उस समय तक तो सत्य और अहिंसा का पालन करते हुए इन्हें लगभग १५ वर्ष हो चुके थे। सत्य और अहिंसा के प्रति इसी प्रगाढ़ विश्वास का प्रतिफल था कि वह अन्य राजनीतिज्ञों की तरह राजनीति से धर्म को भिन्न नहीं मानते थे। बिना धर्म के राजनीति उनके लिए अनीति थी। वह उसे धोखेबाजी कहते थे। उनका निश्चित मत था कि बुरे कामों का अच्छा फल कभी नहीं हो सकता। पाप से पुण्य नहीं हो सकता। आम का पौधा लगाकर ही आम खा सकते हैं। जैसा कारण वैसा कार्य।

रचनात्मक कार्य

इस तरह सत्य और अहिंसा को लिए हुए वह बराबर स्वतन्त्रता

संग्राम करते रहे। इस बीच में इन्हें एक बार फिर दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा परन्तु वहां से शीघ्र ही वापिस आगये। इस स्वतन्त्रता-संग्राम में न मालूम इन्हें कितनी ही बार जेल जाना पड़ा? कितनी यातनाएँ भोगनी पड़ी थी? खैर जो भी हुआ, इनका ध्यान सदैव स्वत्वानुभव की ओर ही लगा रहा। चर्खा, खादी उनके लिए अहिंसा व सत्य के प्रतीक थे। शूद्रों, दलितों, निर्बलों, असहायों आदि की सेवा सुश्रूषा करना परमात्मा को प्राप्त करने की चेष्टा थी। इतना सब होने पर, इनके विचार में स्वतन्त्रता तो आ ही जावेगी। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर यह कांग्रेस वालों को सदैव ही रचनात्मक कार्य करने का आदेश देते रहते थ। विदेशी कपड़े का बहिष्कार, नमक कानून तोड़ना तथा अन्य असहयोग आन्दोलन सब इसी एक उद्देश्य की पूर्ति के साधन थे।

गांधी जी का धर्म

गांधीजी ठेठ हिन्दू थे। उनके धर्म का रूप वही हो सकता था जो युक्तियुक्त हो तथा अन्तःकरण में बैठ सके। उनका हिन्दूपन सच्चा भागवत् धर्म था जो धर्म दूसरे धर्म का विरोध करे वह धर्म नहीं कुधर्म है। इसी कारण वे सच्चे हिन्दू होने के साथ ही एक पक्के मुसलमान भी थे और पक्के ईसाई भी। वे एक सच्चे सिक्ख भी थे, और एक कट्टर पारसी भी। वह वास्तव में सब कुछ थे। उन्हें सारे संसार में वही एक सत्य स्वरूप दिखाई देता था। चाहे उसे राम कहें अथवा रहीम।

वैष्णव जन तो तेणें कहिए जे पीर पराई जाणे रे। जो दूसरों का दुख समझे, वही वैष्णव है।

उसे चाहे कुछ कह ले। वह सब कुछ है। उनका तो यह निश्चित

मत, पिछले ही दिनों में इस देश में साम्प्रदायिकता का विषविषम रूप से फैल जाने से हो गया था। उस समय भी वह मुसलमानों से द्वेष नहीं करते थे। मुसलमानों के प्रति प्रेम के कारण ही उन्होंने दिल्ली में उपवास किया, तथा कलकत्ते में हिन्दुओं को हथियार फेंक देने पर बाध्य किया। इन सब कार्यों को देख कर बहुत से लोग उनके हिन्दू होने में सन्देह करने लग गये थे। बहुत से लोग कहने लगे थे कि गांधी जी तो मुसलमान हैं, वे हिन्दुओं का नाश करा कर रहेंगे। प्रायः इसी साम्प्रदायिकता की विषम भावनाओं के कारण ही उनकी हत्या भी हुई। परन्तु अगर हम ठण्डे दिल से उनके कथनों पर विचार करें तो सहज ही समझ जावेंगे कि वह एक पक्के हिन्दू थे और इसी कारण वह नोआखाली की आग में कूद पड़े थे। अन्यथा पूर्वी बङ्गाल के हिन्दुओं का राम ही मालिक था। इस सम्बन्ध में उनके निम्न शब्द विचारणीय हैं "हिन्दुओं के शत्रु मुसलमान नहीं, हिन्दू ही हैं। अगर साम्प्रदायिक झगड़े बराबर चलते रहे, तो इस देश से हिन्दू और इस्लाम दोनों ही धर्म मिट जावेंगे। परन्तु हिन्दू लोग याद रखें कि इस्लाम धर्म तो संसार के अन्य देशों में भी है—अतः जीवित बना रहेगा। परन्तु वैदिक धर्म केवल भारतवर्ष में है। अगर वह यहाँ न रहा, तो कहीं भी न रहेगा वह सर्वथा विलीन हो जायगा—आदि" ऐसे हृदय-स्पर्शी शब्द एक सच्चे हिन्दू के अश्रुपूर्ण हृदय से ही निकल सकते हैं!

इन सबके अतिरिक्त उन्होंने कलकत्ते में प्रचलित फूका प्रथा बन्द कराई। उन्होंने यह प्रण कर लिया था कि जब तक इस देश से फूका प्रथा नहीं उठ जावेगी तब तक वह न तो गाय का दूध पियेंगे और न यज्ञोपवीत ही धारण करेंगे। सचमुच उनके हृदय में एक सच्चे हिन्दू का परमात्मा आकर बैठ गया था।

अन्तिम दिन—महायात्रा

स्वतन्त्रता-संग्राम की सदैव बागडोर सम्हाले रहने के कारण सबको उपयुक्त एवं सत्य राह बताने के कारण, सबको अपना आत्मीय मानकर प्यार करने के कारण, महात्माजी बापू कहलाने लग गये थे। जो लोग उनसे उम्र में कहीं अधिक बड़े थे, वे भी उनसे बापू कहते थे। उनकी बातें ही कुछ ऐसी थीं।

अन्तिम दिनों में वह नित्य शाम को सामूहिक प्रार्थना करते थे। इसमें देश-विदेश के, विभिन्न प्रकार के स्त्री पुरुष सभी इकट्ठे होते थे। यहीं पर सामयिक विषयों की चर्चा हो जाया करती थी। उसे चाहे गांधीजी का व्याख्यान कहलें चाहे महात्माजी के प्रवचन अथवा बापू के आशीर्वाद। उनका एक ही उद्देश्य था कि सब अच्छाई की ओर ही प्रवृत्त हों और सुखी रहें। इसी हेतु वह नित्य प्रति निम्न कीर्तन स्वयं करने के अतिरिक्त अपनी पूरी प्रार्थना-सभा से करवाया करते थे—

रघुपति राघव राजा राम
पतित पावन सीताराम

ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान्।

इसी रामधुन के समय उन्होंने कन्ट्रोल की धुन पकड़ कर कन्ट्रोल हटाया था।

एक दिन प्रार्थना सभा में गांधीजी ने यह कहा था कि 'मेरी इच्छा है कि मुझे कोई गोली से मारदे और अन्तिम बार मेरे मुख से 'राम' निकले।" सत्यव्रती की वाणी कैसे मिथ्या होती! उनके गोली ही मारी गई और 'हे राम' कहते हुए ही वह कालरात्रि के महानान्धकार में विलीन होगये। उनका निधन माघ कृष्णा पंचमी, सम्वत् २००४ तदनुसार तारीख ३० जनवरी, सन् १६४८ के दिन सायं

५॥ बजे के समय हुआ। उस समय उनकी अवस्था ७८ वर्ष ३ महीने २६ दिन थी। इसी घड़ी मानों भारत की आत्मा विलीन होगई। सारे संसार में शोक के काले बादल छागये। संसार ने मृत्यु पर्यन्त जैसा इस महात्मा का सम्मान किया, वैसा अन्य उदाहरण शायद इतिहास में ढूंढे न मिलेगा। सम्भवतः भविष्य में भी असम्भव है। महात्मा गांधी, हमारे बापू अथवा हमारे राष्ट्र-पिता में भारतवर्ष की समाज व्यवस्था का पूर्ण समुच्चय था। जन्म से वह वैश्य थे, तथा आदर्शों से ब्राह्मण थे। धर्म और आदर्शों की प्रतिष्ठा में लगने वाला उनका त्याग और तपस्या का जीवन एक आदर्श ब्राह्मण का जीवन था। आदर्शों की प्राप्ति में उन्हें सदैव ही संघर्ष करना पड़ा। इस संघर्ष में उनका अदम्य उत्साह, उनकी लगन, उन्हें हमारे सम्मुख एक वीर क्षत्रिय के रूप में उपस्थित कर देते हैं। मजदूर के प्रति, अछूत के प्रति उनका असीम प्रेम, उनका निरन्तर सेवामय जीवन, उनकी अपने आप को भंगी कहने की उत्सुकता और किसान-मजदूर जैसा स्वच्छ, सीधा-सादा परिश्रमी जीवन बिताने की भावना उन्हें एक श्रेष्ठ शूद्र का रूप दे देती है। इतना ही नहीं, उनकी सहिष्णुता तथा समझौते की व्यावहारिक बुद्धि उनके श्रेष्ठ वैश्यत्व की प्रतीक थी। इस प्रकार उनके अन्दर भारतीय-सभ्यता एवं समाज व्यवस्था का शुद्ध समुच्चय एवं समन्वय था। जब कभी इतिहासकार उनके जीवन का अध्ययन करेंगे वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि महात्मा गांधी ने भारतीय संस्कृति का उद्धार तो किया ही, साथ ही भारतीय राजनीति को भी उच्च स्तर पर पहुँचा दिया। महात्माजी के पार्थिव शरीर का अन्तिम संस्कार यमुना के किनारे राजघाट पर हुआ था। राजघाट का रास्ता दिल्ली के लाल किले के बराबर होकर जाता है। लाल किले पर लहर लहर लहराता हुआ तिरंगा प्यारा प्रत्येक राहगीर को यही बता रहा है और बताता रहेगा कि उस एक दुबले पतले, वृद्ध व्यक्ति में कितनी अपार शक्ति थी। उसी के सत्य के सम्मुख ब्रिटिश साम्राज्य जैसी महती सत्ता को झुक जाना पड़ा था।

: २ :

पं० जवाहरलाल नेहरू—हमारे हृदयहार

एक बार स्वर्गीय बापू से किन्हीं महानुभाव ने पूछा "कि आपके उत्तराधिकारी कौन होंगे ? क्या राजाजी (श्री राजगोपालाचार्य जी) होंगे।" महात्मा जी ने उत्तर दिया, 'नहीं, मेरे उत्तराधिकारी जवाहरलाल हैं। उनमें मेरे बाद राष्ट्र को सम्हालने की क्षमता है। उनके हाथों में राष्ट्र सुरक्षित है........इत्यादि।"

जिनके पुत्र नहीं होते, वे पुत्र गोद लेते हैं। परन्तु महात्मा गांधी को एक ऐसे पुत्र की आवश्यकता थी, जो उनका सच्चा उत्तराधिकारी हो सके। अतः महात्मा जी ने पुत्रों के होते हुए भी जवाहरलाल को ही अपनी विरासत—भारत का भार—सौंपी। हमारे विचार से पं० जवाहरलाल जी ने भी बापू को अपना गोद लिया हुआ पिता माना था। संसार में यह भी एक अनूठा उदाहरण था। किन्तु सत्य था। कलकत्ता—कांग्रेस में पं० जवाहरलाल जी का अपने पूज्य पिता स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू के साथ मतभेद था। उस समय महात्मा जी का ही काम था जो जवाहर को समझाकर अपने पक्ष में कर सके थे। अन्तिम यात्रा के समय स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू अपने प्यारे पुत्र जवाहर को बापू के ही हाथों में सौंप गये थे।
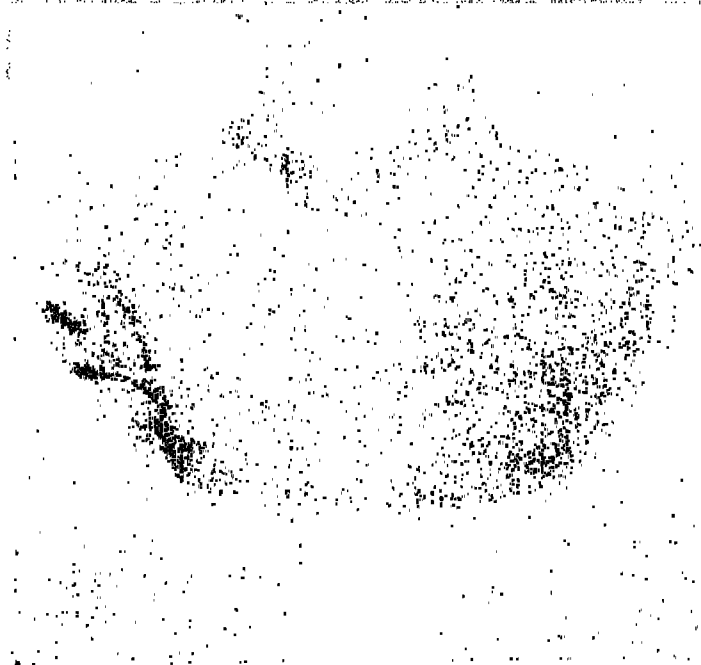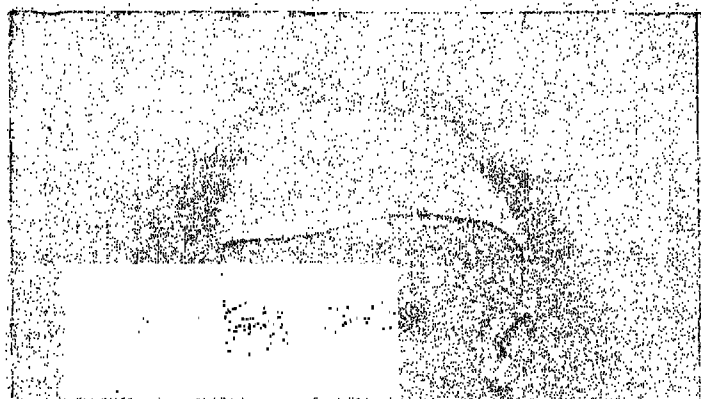
Pt. Jawaharlal Nehru

वंश—परिचय, जन्म तथा बाल्यकाल

पं० जवाहरलाल नेहरू काश्मीरी कौल ब्राह्मण हैं। लगभग २०० वर्ष पहिले इनके कुटुम्ब के पूर्वज दिल्ली में आकर बस गये थे। दिल्ली के बादशाह फर्रुखशियर ने इनके लिये चांदनी चौक के पास वाली नहर के किनारे एक बढ़िया महल बनवा दिया था। तब से लोग इन्हें 'कौल नेहरू' कहने लगे। दिल्ली की नहर ने इन्हें 'नेहरू' परिवार कर दिया। कालान्तर में लोग 'कौल शब्द' को भूल गये और ये केवल नेहरू करके प्रसिद्ध हो गये। इसी वंश में पं० गंगाधर नेहरू हुए। यह दिल्ली के कोतवाल थे। सन् १८५७ के गदर में इन्हें दिल्ली छोड़नी पड़ी। वहां से ये लोग आगरा आ गये और शान्तिपूर्वक रहने लगे। ता० ६ मई सन १८६१ को स्वनाम धन्य स्व० पं० मोतीलाल नेहरू का जन्म हुआ। दुर्भाग्यवश जन्म के दो महीने पहिले ही इनके पिताजी का देहान्त हो चुका था। अतः इनके बड़े भाइयों ने ही इनका लालन-पालन किया था। आगरा से उठकर जब हाईकोर्ट इलाहाबाद गया, तब ये लोग भी इलाहाबाद ही जाकर बस गये, क्योंकि इनके बड़े भाई स्व० पं० नन्दलाल जी वकालत करते थे! प्रयाग में पहुंच कर पं० मोतीलाल जी ने भी अपने बड़े भाई के साथ वकालत शुरू की। मोती की आब निखर पड़ी। लक्ष्मी मानो इन पर मुग्ध हो गई थी। केवल संयुक्तप्रान्त ही नहीं, बल्कि सारे देश में इनकी वकालत की तूती बोलने लगी।

इन्हीं पं० मोतीलालजी की दूसरी पत्नी स्वर्गीया स्वरूप रानी नेहरू की पवित्र एवं भाग्यशालिनी कोख से हमारे हृदयहार पं० जवाहरलाल नेहरू का माघ कृष्णा सप्तमी सम्वत् १९४६ तदनुसार ता० १४ नवम्बर सन् १८८६ के दिन जन्म हुआ। उन दिनों यह लोग

इलाहाबाद के मीरगंज मोहल्ले में रहते थे। आनन्द की लहर से सारा परिवार पुलकित हो उठा। दिल खोल कर आनन्दोत्सव मनाया गया।

बचपन इनका राजसी ठाट-बाट का था भाग्यशाली पिता की सन्तान होने के कारण इनके दुलारों का क्या कहना था। इनकी देख-भाल करने के लिए दाईकला में उत्तीर्ण अंग्रेज दाइयां नौकर थीं। अब आप सहज ही अनुमान कर लीजिये कि इनका बाल्यकाल कैसे बीता होगा। इन्हीं सब ठाट-बाटों को देख कर हमारे देश में जवाहरलाल जी की रहन-सहन के बारे में अनेक मन-गढ़न्त बातें भी प्रचलित हैं। कोई-कोई कहते हैं कि इनके कपड़े पेरिस से धुलकर आते थे।

इन दाइयों के द्वारा लालन पालन होने के कारण इन पर बचपन से ही अंग्रेजियत का रंग चढ़ने लगा। पिता जी तो अंग्रेजी रंग में पहिले से ही रंगे हुए थे। इतना होते हुए भी पं० मोतीलाल जी ने इन्हें केवल दाइयों तथा अध्यापकों पर नहीं छोड़ा। वह स्वयं भी इनकी देख-भाल करते रहते थे। पं० मोतीलाल जी का स्वभाव उग्र था। तनिक सी भूल होने पर वह अपने पुत्र की तुरन्त पीठ-पूजा कर देते थे। अतः जवाहरलाल अपने पिता से बहुत डरते थे। कहने का सारांश यह है कि इतने लाड़-प्यार में पाले जाने पर भी वह बिगड़ नहीं पाए। इसी बात पर आश्चर्य सा प्रकट करते हुए पं० जवाहर-लाल जी ने स्वयं भी अपनी 'आत्मकथा' में इस ओर संकेत किया है—"समृद्धिशाली माता-पिता के पुत्र, विशेषकर भारतवर्ष, में प्रायः बिगड़ जाते हैं। और जब वह कहीं इकलौता बेटा हो, तब तो 'गिलोय और नीम चढ़ी' ही समझिए। खास कर तब, जब कि पहली ११ वर्षों तक पिता के और कोई सन्तान न हो और वह इकलौता

पुत्र घर में इकलौता बालक भी हो........" इत्यादि। हमारे विचार में स्वर्गीय पं० मोतीलाल जी की देख-रेख के कारण, तथा हमारे सौभाग्य के कारण ही जवाहरलाल 'जवाहर' बन गये। अस्तु!

छोटेपन में प्यार के कारण जवाहरलाल को सब लोग 'नन्हा' कह कर पुकारते थे। कभी-कभी नन्हा बड़े मजे करता था। जब रोने की उमङ्ग आती, तो रोने लगता और जब कोई रोने का कारण पूछता तो फिर और जोर-जोर से पूछने वाले का नाम ले कर रोने लगता और कहता, इसने मारा है।" जब कोई दूसरा पूछता, तो उसे ही मारने वाला बताने लग जाता। इस तरह जैसे-जैसे पूछने वाले बदलते, मारनेवाले का नाम भी बदल जाता!

इस प्रकार जवाहरलाल आनन्द भवन के वैभव और विलास के बीच पल रहे थे। उन दिनों का आनन्द-भवन पश्चिम के मोहक वातावरण में मुग्ध था। विलास जवानी पर पहुंच चुका था। इतना सब कुछ होने पर भी बचपन से ही चरितनायक गम्भीर और शान्त थे और जो बात उन्हें ठीक जँचती वह करके ही मानते थे।

६ से १२ वर्ष तक घर पर ही इनकी शिक्षा हुई। पढ़ने के साथ खेल-कूद का इनको शौक था। घोड़े पर चढ़ना, फुटबाल, टैनिस और तैरना इनके नित्य के विनोद थे। १२ वर्ष की अवस्था में प्रसिद्ध थियोसोफिस्ट श्री ब्रुक्स एवं गवर्नमैण्ट हाई स्कूल प्रयाग के तत्कालीन प्रधानाध्यापक श्री गार्डन इनके मुख्य शिक्षक नियुक्त हुए। श्री ब्रुक्स एक स्वतन्त्र एवं विद्वान प्रचारक तथा भारतीय संस्कृति के प्रेमी थे। ब्रुक्स साहब का अधिकांश समय आध्यात्मिक चिन्तन में जाता था। बालक को सदाचारी बनाने की ओर उनकी विशेष रुचि थी। उन्होंने जवाहर जी को मांस खाने की मनाई की, उनका सिनेमा देखना छुड़ाया—इत्यादि।' मोतीलाल जी को ये बातें न रुचीं,

उन्होंने ब्रुक्स साहब को अलग कर दिया। अब जवाहरलाल जी फिर पाश्चात्य रहन-सहन के प्रवाह में बहने लगे।

विलायत यात्रा व बैरिस्ट्री

सन् १६०४ में पं० मोतीलाल जी सपरिवार इँगलैण्ड गये। वहाँ के प्रसिद्ध विद्यालय हैरो में इनका नाम लिखा दिया गया। यहाँ इन्होंने अनेक राजनीति विशारदों एवं विचारकों से शिक्षा पाई। यहां इनके सहपाठियों में इस देश के अनेक प्रसिद्ध लोग थे, जैसे कपूर्थला के युवराज महाराज गायकवाड़ के पुत्र म० शाहसुलेमान आदि। स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के बाद जवाहरलाल कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कालेज में भर्ती हुए और जन्तु विज्ञान (Zoology) वनस्पति विज्ञान (Botany) एवं रसायन शास्त्र (Chemistry) में सम्मान सहित सन् १६०६ में बी० ए० पास हुए। इनकी असाधारण योग्यता से कालेज के अध्यापकों व संचालकों ने सन्तुष्ट होकर बिना परीक्षा लिये ही इन्हें एम० ए० आनर्स का सार्टीफिकट दे दिया। कालेज के इनके सहपाठियों में एम० शेरवानी, एम० ए० ख्वाजा, डा० महमूद, डा० किचलू आदि हैं। संयोग की बात, इनके अधिकांश सहपाठी आगे चल कर असहयोग आन्दोलन में इनके सहयोगी हुए। कालेज की शिक्षा समाप्त करने के बाद यह लन्दन के 'इनरटेम्पुल' में भरती हुए और सन् १६१२ में इन्होंने बैरिस्ट्री की उपाधि प्राप्त कर ली।

भारतवर्ष वापिस

बैरिस्टर के रूप में पंडित जवाहरलालजी भारतवर्ष वापिस आ गये। नरमदलके नेताओं का पं० मोतीलाल जी के यहां तांता लगा रहता था। उनके विचारों का इन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

सन १९१२ की पटना कांग्रेस में यह शामिल हुए और तब से बराबर कांग्रेस अधिवेशनों में भाग लेते रहे। यह केवल राजनीति के विद्यार्थी की हैसियत से उनके विचारों का अध्ययन ही करते थे। प्रत्यक्ष भाग नहीं लेते थे।

विलायत में दीर्घकालीन प्रवास ने जवाहरलाल जी में बड़ा परिवर्त्तन कर दिया। अंग्रेजों के देशप्रेम और अदम्य साहस की वह प्रशंसा करते थे और अब भी करते हैं, किन्तु उनकी अहमन्यता पालिसी अर्थात धूर्तता, स्वार्थपरायणता से उन्हें चिढ़ थी। पहिले तो वे इन बातों से चिढ़ते भी थे। बाद में विद्रोही होकर भारत में अंग्रेजी शासन को अवांछनीय ही समझने लगे और उसे मिटाने की ठान लिया। सन १९१२ से लेकर सन १९२० तक यह अपने पिताजी के साथ बैरिस्ट्री करते रहे, किन्तु उसमें इनकी विशेष रुचि न थी।

विवाह

इन दिनों जवाहरलालजी एक चपल विद्यार्थी थे। फरवरी सन् १९१६ में बसंतपंचमी के दिन दिल्ली के पं० जवाहरलाल कौल की पुत्री कुमारी कमला के साथ बड़ी धूमधाम के साथ इनका विवाह हुआ। विवाह के बाद कई महीनों तक आप अपनी नवपरिणीता पत्नी के साथ काश्मीर की सैर करते रहे। सन् १९१७ में पुत्री इन्दिरा का जन्म हुआ। सन १९२४ में एक पुत्र भी हुआ था, पर वह जन्म के तीसरे ही दिन जाता रहा!

राजनीति में पदार्पण

सबसे पहिले डा० बेसेन्ट के होमरूल आन्दोलन में आपने काम किया। फिर १९१९—२० में अवध के किसानों में काम किया। फिर जो असहयोग की लहर दौड़ जाने पर यह [illegible] में कूद पड़े,

सन १६२१ में इन्हें ६ महीने की सजा हुई। दूसरी बार सन १६२२ में प्रयाग में विदेशी कपड़े की दूकान पर धरना देने के कारण इन्हें १८ महीने की सख्त कैद हुई तथा इन पर १०० रु० जुर्माना हुए। इनके साथ में इनका समस्त परिवार भी आचला था।

सन १६२२ में यह सर्व सम्मति से इलाहाबाद की चुंगी के चेयरमैन चुने गये। इनकी अध्यक्षता में इलाहाबाद की चुंगी ने खूब उन्नति की। सन १६२६ में इनकी जीवन संगिनी कमला बीमार हुईं। उन्हें लेकर वह स्विटजरलैंड इलाज कराने गये।

सन् १६२७ में भारतीय राष्ट्रसभा के प्रतिनिधि बन कर साम्राज्य विरोधी संघ के जेनेवा अधिवेशन में सम्मिलित हुए। फिर सन १६२७ में ही रूस गये और वहां से साम्यवाद से प्रभावित होकर लौटे। यहां यह बता देना अनुचित न होगा कि यह क्रमशः उग्र राजनीतिक विचारधारा को अपनाते जा रहे थे। इस समय इन्होंने मजदूरों के आन्दोलन में भी भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था।

सन १६२८ में कलकत्ता में कांग्रेस हुई। इसके अध्यक्ष पं० मोती· लाल नेहरू थे। यह एक प्रकार से महत्वपूर्ण अधिवेशन था। मोती-लाल जी चाहते थे कि नेहरू रिपोर्ट बहुमत से पास हो जाय, पर ऐसा न हो सका। सबसे बड़े विरोधी उनके लाल जवाहर ही थे। इन्होंने रिपोर्ट का खूब विरोध किया। इनका निश्चित मत था कि 'पूर्ण स्वतन्त्रता हमारा ध्येय है' यही प्रस्ताव पास कर दिया जाय। बस इसी समय गांधी जी ने इन्हें समझाया 'कि बेटे! अगली बार तेरे ही सिर पर यह कांटों का ताज रखा जायेगा। तब इस प्रस्ताव को पास कर लेना। तब जाकर रिपोर्ट इस शर्त पर पास हुई कि अगर एक वर्ष के भीतर सरकार इस रिपोर्ट के अनुसार शासन

व्यवस्था न कर दे तो आगामी कांग्रेस में इस रिपोर्ट की जगह स्वाधीनता की गगन भेदी घोषणा की जाये।

सन् १६२६ का समय हमारे जवाहरलाल के जीवन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण वर्ष समझी जानी चाहिए। सन् १६२६ में नागपुर में होने वाले मजदूर कांग्रेस के यह अध्यक्ष हुए। उन्ही दिनों उन्होंने भारतीय स्वधीनता संघ स्थापित किया। यहां यह बता देना अनुचित न होगा कि सन १६१२ से लेकर सन् १६२६ तक बराबर यह कांग्रेस के प्रधान मन्त्री रहे। सम्भवत: इतना सफल मन्त्री कांग्रेस को कभी नहीं मिला न इनसे पहिले और न इनके बाद में।

सन् १६२६ में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ। पंजाब निवासियों के हृदय मे जलियांवाले बाग के घाव हरे हो आए। गणना के अनुसार ३१ दिसम्बर सन् १६२६ को रात के १२ बजे यह वर्ष पूरा होता था। अत: ज्योंही घड़ी ने १२ का घन्टा बजाया त्योंही जवाहरलाल ने राष्ट्रपति की हैसियत से पूर्णस्वाधीनता का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास करके अंग्रेजी शासन को चुनौती देदी।

रावी नदी का वह तट जहां पर भारत ने एक स्वर से पूर्णस्वाधीनता की मांग की घोषणा की थी हमारा एक तीर्थ है। यहां प्रतिवर्ष १ जनवरी के दिन मेला लगा करेगा और हमारे देश वासी अपने अमर नेताओं के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित किया करेंगे। जिस स्वतन्त्रता के प्रस्ताव को लाहौर कांग्रेस ने सर्वसम्मति से पास किया था, उसको देश के कोने कोने में प्रतिज्ञा के रूप में दुहराने के लिये २६ जनवरी का दिन निश्चय किया गया। कांग्रेस ने निश्चय कर लिया था कि अब तिरंगे झण्डे के नीचे स्वतन्त्रता संग्राम में सर्वस्व होम देने के लिये वह तैयार है। कांग्रेस ने अहिंसात्मक सत्याग्रह छेड़ देने का निर्णय करके उसका सारा भार महात्मा गांधी के ऊपर छोड़ दिया।

सन् १६३० को महात्मा जी की डण्डी यात्रा प्रसिद्ध है। उन दिनों "नमक कानून तोड़ दिया। सरकार का मुंह मोड़ दिया" के नारे हर जगह लगाये जाते थे। इतना ही नहीं विदेशी कपड़ा तथा शराब की दुकानों पर धरना देना भी इस कार्यक्रम में शामिल थे। 'विदेशी की होली जलेगी हमारी' तथा चला दो चर्खा हरेक घर में, तब चक्र यह तुम हिला सकोगे" आदि गाने बच्चे बच्चे की जबान पर थे। उन दिनों तो बस एक ही लहर थी—

सरयू समय यही है कुछ करलो देश सेवा
है स्वर्ग से भी बढ़ कर इस वक्त जेल खाना "आदि।

और जेलें ठसाठस भर गईं। जवाहरलाल, कमला, मोतीलाल नेहरू तथा स्वरूप रानी नेहरू आदि सबके सब, सपरिवार ही जेल में पहुँचा दिये गये। उस समय वृद्धा माता स्वरूप रानी नेहरू के सिर पर लाठियां मार कर पुलिस के वीरों ने रक्त की धारा बहा दी थी। वह दृश्य हमारे सम्मुख आज भी अङ्कित है। क्या वे वीर आज जवाहरलाल के पास जाकर क्षमा याचना करके अपनी कालिख धोने का साहस कर सकेंगे?

जेल से छूट कर जवाहरलालजी बाहर आए। इस समय इनके पिता जी सख्त बीमार पड़ गये। सरकार के रवैये में परिवर्तन न पाकर वे फिर स्पष्टता पूर्ण वक्तृता झाड़ने लगे ७ दिन बाद ही फिर जेल भेज दिये गये। ६ फरवरी को उनका स्वर्गवास होगया। पंडित जवाहरलाल नेहरू तब से लेकर आज दिन तक बराबर देश के अग्रगण्य नेता रहे हैं। इनकी लोकप्रियता का अनुमान आप इसी एक बात से लगा सकते हैं कि यह कांग्रेस के चार बार अध्यक्ष रह चुके हैं—सन्सन् १६३६ में लखनऊ, १६३७ में फैजपुर तथा १६४६ में ये ही

सभापति थे। लाहौर सन् १६२६ की कांग्रेस की चर्चा हम कर ही चुके हैं।

जवाहरलाल जी का व्यक्तित्व

इस संसार में कोई भी व्यक्ति किस प्रकार बड़ा होता है, इस सम्बन्ध में अंग्रेजी में एक कहावत है, जिसका भाषानुवाद इस प्रकार है—"कुछ व्यक्ति तो जन्म से ही महान् होते हैं, कुछ अपनी कर्त्तव्य-परायणता तथा कर्म-सौन्दर्य के कारण महानता प्राप्त कर लेते हैं तथा कुछ के ऊपर महानता लाद दी जाती है"। हमारे विचार से हमारे चरित नायक के ऊपर तीनों ही कारण लागू हैं। इनका जन्म पं० मोतीलाल नेहरू जैसे पिता के घर हुआ—उस घर में जिस पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की कृपा थी। पं० मोतीलाल जी स्वयं भी किसी से कम न थे—क्या द्रव्य में, क्या योग्यता में और क्या सार्वजनिक जीवन में? फिर पं० जवाहरलाल जी ने स्वयं भी महानता की कमाई की। इन्होंने आराम के जीवन को ठोकर मार कर उन्होंने कांटों की सेज अपनाई। आज तक वह उसी त्याग, तपस्या और सेवा के संघर्ष में तल्लीन हैं। रोटी कमाने का संघर्ष नहीं, जीवन की कठिनाइयों से भिड़ने का संघर्ष, अपने देश को ऊपर उठाने का संघर्ष। इसके अतिरिक्त इनके ऊपर सदैव ही स्व० बापू का हाथ रहा। बापू के साथ यह वैसे ही थे, जैसे राम के साथ लक्ष्मण, अथवा कृष्ण के साथ अर्जुन। अगर हम इन दोनों महान व्यक्तियों को नर और नारायण कह दें, तब भी अनुचित न होगा। इनकी माता स्वरूप रानी ने इन्हें महात्मा जी के हाथों में ऐसे ही सौंपा था, जिस तरह देवी सुमित्रा ने राम वन गमन के समय अपने प्यारे पुत्र लक्ष्मण से कहा था, कि अगर राम और सीता वन को जाते हैं, तो इन महलों में तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं और इन्होंने भी अपनी माता के वचनों को, अपने कर्त्तव्य-पथ को उतनी ही दृढ़ता के साथ निभाया।

इस स्वतन्त्रता संग्राम के बीच इनका घर छूटा, द्वार छूटा, पिताजी गये, माता जी गईं, पत्नी गई, परन्तु देश प्रेम की उमंग के आगे यह सब कुछ भूल सा चुके थे। माता पिता और पत्नी की तथा धन धाम धरा की, एवं जीवन परम्परा की, किसी की भी इन्हें तनिक भी ममता नहीं व्यापी। आज पंडितजी के वंश में कोई नहीं है। जवाहरलाल के बाद एक प्रकार से नेहरू—परिवार का अब अन्त ही समझिये, परन्तु इस ओर इनका ध्यान भी नहीं जाता है। यही दृढ़ता और सच्ची लगन इनकी सफलता का रहस्य है।

हमारे चरित्रनायक महात्मा गांधी को वास्तविक पिता मानते थे और बापू भी इन्हें अपना बेटा मानते थे। तभी तो कलकत्ता कांग्रेस में मतभेद होने पर बापू ही इन्हें राह पर ला सके थे, और स्वयं भी इन्हीं को अपना उत्तराधिकारी बताते थे। बापू की मृत्यु के अवसर पर जिन लोगों ने जवाहरलाल जी को रोते देखा होगा, वे समझते होंगे कि महात्मा जी को वह क्या समझते थे। यह वही जवाहरलाल थे जो पिता, पत्नी आदि की मृत्यु के अवसर पर अपनी आंखों से एक भी आंसू डालना अपना अपमान समझते थे! बापू की मृत्यु के बाद इनमें बहुत परिवर्त्तन हो गया है अब वह अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर हो गये हैं तथा अपने उत्तरदायित्व के प्रति अधिक सचेत हैं। बापू जीवित रहते तो सम्भवतः आप वैसे ही थे जैसे कि पिता के सम्मुख पुत्र अलेल बना रहता है। हमारे कहने का सारांश यह है कि स्वयं महात्मा जी के व्यक्तित्व की हमारे चरित्रनायक के ऊपर बहुत ही गहरी छाप पड़ी। वह उनसे बहुत प्रभावित हुए।

पं० जवाहरलाल नेहरू ने कारागार निवासकाल में कई एक पुस्तकें लिखी हैं। इनमें सन् १९३४-३५ में लिखी हुई इनकी 'आत्म-कथा' तथा सन १९४२—४५ में लिखी है 'भारत की खोज

(Discovery of India) मुख्य हैं। ये दोनों पुस्तकें अंग्रेजी में लिखी हुई है। इनकी भाषा कितनी सुन्दर है, यह बताना कठिन है। परन्तु हम इतना अवश्य कहेंगे कि पं० जवाहरलाल नेहरू संसार के प्रथम आठ अंग्रेजी गद्य लिखने वालों में गिने जाते हैं। इन दोनों पुस्तकों में इनका हृदय और इनके मस्तिष्क दोनों ही प्रतिबिम्बित हैं। स्थान-स्थान पर इन्होंने महात्मा गांधी की प्रशंसा की है और उनका प्रभाव स्वीकार किया है। देखिये—"महात्मा गांधी ने अपने अन्तःकरण से पुकारा-मातरम् स्वतन्त्र हो अब दासता का काम नहीं। उनकी इस पुकार को सारे देश ने प्रत्युत्तर दिया। मेरे विचार से तो इसी आन्दोलन में भारतमाता की बेड़ियां ढीली पड़ने लग गई थी, और स्वतन्त्रता देवी का राजमार्ग खुल गया।"
(आत्मकथा)

सन् १६२० में महात्मा जी ने 'तलवार का सिद्धान्त' करके एक लेख लिखा था। उसके इन शब्दों ने मुझे बहुत प्रभावित किया—"जब आपके सामने यह प्रश्न हो कि कायरता अथवा अहिंसा—तब मैं कहूँगा कि हिंसा को अपनाओ अगर भारतवासी कायरता के कारण दासता के अपमानों तथा दासता की यातनाओं को सहन करते हैं, तो मैं कहूँगा कि हथियार लेकर देश की रक्षा करना ही हमारा धर्म है। परन्तु मेरा विश्वास है कि हिंसा की अपेक्षा अहिंसा का स्थान कहीं अधिक ऊँचा है। दण्ड देने से क्षमा कर देना वीर का काम है। क्षमा वीरस्य भूषणम्" ....मैं न तो भारतवर्ष को असहाय मानता हूँ और न अपने को ही.........इत्यादि।"

कहने का तात्पर्य यह है कि इनमें लक्ष्मण जैसी वीरता का स्रोत सदैव ही उफान मारा करता है। इनमें आज भी अद्भुत तेज और स्फूर्ति है। इन्हें खतरे के प्रति आकर्षण है। जिधर कठिनाइयां अधिक

होंगी, रास्ता कँटीला होगा, बलिदान और उत्सर्ग की मांग होगी, उधर खिंचने के लिये वह लाचार है। इस ज्वाला के साथ उनमें शीतलता भी है। स्व० मौलाना मुहम्मदअली उन्हें 'जवान बूढ़ा' कहते थे।

हमारे मनित ।ायक में अपने लक्ष्य के प्रति अजीब तन्मयता है। उन्हें सैद्धान्तिक वाद-विवाद से अरुचि है। इन्हें देश-वासियों से अनूठा प्रेम है। इन्होंने अपनी 'भारत की खोज' नाम की पुस्तक में लिखा है, कि "वे विमान में ी ओर सजल एवं स्नेहार्द्र दृगों से देखा करते थे। उनके हार्दिक प्रेम से मैं द्रवीभूत हो जाता था। उसके स्मरण से आज भी सिहर जाता हूं। उनका भोलापन मुझे उनकी झोंपड़ियों में रहने को बाध्य करता है...... आदि।" यही कारण है कि जब यहां के निवासी भेड़ बकरियों की तरह व्यवहार करने लगते हैं, तो पंडितजी को क्रोध आ जाता है। इस क्रोध में बड़प्पन की ठसक नहीं, बल्कि प्रेम से उत्पन्न दया ही रहती है। उनका क्रोध वैसा ही है जैसा कि पिता का अपने पुत्र के प्रति क्रोध होता है। जिन्होंने शरणार्थियों की करुण कथा सुनते समय जवाहर की एक एक बरुनी में भी आंसू गिरते देखा है, वह सम्भवतः उनकी मर्म—व्यथा का कुछ अनुमान भले ही लगा सकें।

१९४२ के 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' वाला आन्दोलन प्रसिद्ध है—प्रसिद्ध ही क्या हमारे राष्ट्रीय-इतिहास की रेखा-प्रस्तर है। उस आन्दोलन में गिरफ्तार होने के बाद कांग्रेस कार्य कारिणी के सदस्य सन् १९४५ में जेल से छूटे थे। पं० जवाहरलाल जी ही सबसे पहिले व्यक्ति थे जिन्होंने जेल के द्वार पर आते ही सबसे पहिले उस आंदोलन की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली थी। बलिया निवासियों की वीर-गाथा पर वह मुग्ध थे और जब तक स्वयं बलिया न हो आए, उन्हें चैन नहीं मिला। ऐसे हैं हमारे जवाहरलाल ! वह

लगभग ३० वर्ष से हमारे देश में राजनीतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता के अलख जगाते हुए, कुछ अजब दीवानेपन के साथ, घूम रहे हैं।

पं० जवाहरलाल जी के हृदय की गरमी के सामने इस युग में प्रतिक्षण चल रहे भीषण शोषण ने बर्फ की दीवार खड़ी करनी चाही है—परन्तु उनकी तीर-सा वेध करने वाली व्याकुलता के आगे वह टहर न सकी। इन्हें अपने देश को अन्य देशों की हलचलों की पृष्ठ भूमि पर रख कर देखने की आदत है। इन्होंने ही भारतीय राज-नीति को अन्तर्राष्ट्रीयता का प्रकाश प्रदान किया है। अस्तु।

'आवाज़े खल्क़ को नक्क़ारे खुदा समझो।' लोग वर्षों पहिले यही कहने लगे थे कि जवाहरलाल ही भारतवर्ष के प्रथम प्रधान मन्त्री होंगे—वे ही इस आसन के योग्य हैं; और वही हुआ भी। स्व० महात्मा जी ने भी सन् १६२६ में जवाहर के बारे में यही विचार प्रकट किये थे—'बहादुरी में कोई उनसे बढ़ नहीं सकता और देश-प्रेम में उनके आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग कहते हैं कि वह उतावले और अधीर हैं। यह तो इस समय का एक विशिष्ट गुण है। फिर जहां उनमें एक वीर योद्धा की उग्रता, स्फूर्ति तथा अधीरता है, वहां एक राजनीतिज्ञ का विवेक भी है। निस्सन्देह वह अपनी परिस्थिति से बहुत आगे की बात सोचने वाले उग्रवादी हैं।" ......वह स्फटिक मणि की भांति पवित्र है, उनकी सत्यशीलता सन्देह के परे है। वह अहिंसक और अनिन्दनीय योद्धा है। राष्ट्र उनके हाथ में सुरक्षित है।" बापू के ये शब्द चिरस्मरणीय रहेंगे। उन्होंने जवाहर का जौहर देख लिया था। तभी उन्हें अपना उत्तरा-धिकारी बताया था। हमें अपने प्रधानमन्त्री माननीय पं० जवाहरलाल नेहरू में पूर्ण विश्वास है, उनसे हमें बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। सचमुच ही राष्ट्र उनके हाथ में सुरक्षित है।

: ३ :

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य--'राजाजी'

जिस तरह खान अब्दुल गफ्फार खां सीमान्त प्रान्त के गांधी कहे जाते हैं। ठीक उसी तरह बहुत से मद्रासनिवासी उन्हें 'तामिलगांधी' के नाम से जानते हैं। वैसे सी० आर (C. R.) करके वे प्रचलित है। सब उन्हें 'राजा जी' करके जानते हैं।

एक तरह से राजाजी एक बौद्धिक व्यक्ति हैं—भावनात्मक आवेश का उनमें सर्वथा अभाव सा है। एक बार निर्वाचन दौरे के समय प्रोफेसर अब्दुलहमीद ने उनके विरुद्ध ट्रिब्यून में एक लेख लिखा था। उस लेख के ये शब्द विचारणीय हैं—"यदि महात्मा जी से उनके छः सर्वोत्तम नायकों—सर्वोच्च योग्यता और गुण वाले शिष्यों के नाम पूछे जायें तो वह बिना किसी हिचकिचाहट के उनमें श्री राजगोपालाचार्य का एक नाम गिना देंगे। श्री राजगोपालाचार्य एक बौद्धिक दानव—'देव' हैं. वह अपनी मानसिक जागरूकता के लिए ठीक ही प्रसिद्ध हैं। एक प्रभावशाली व्याख्यानदाता, एक व्युत्पन्न विद्वान्, भारी हथौड़े-सी चोट करने वाली उनकी शैली और छेद कर टुकड़े-टुकड़े कर देने वाली उनकी अभिव्यक्ति शक्ति हम सबके लिये ईर्षा की वस्तु है। वह एक पहुंचे हुए राजनीतिज्ञ और सूक्ष्मदृष्टा देश
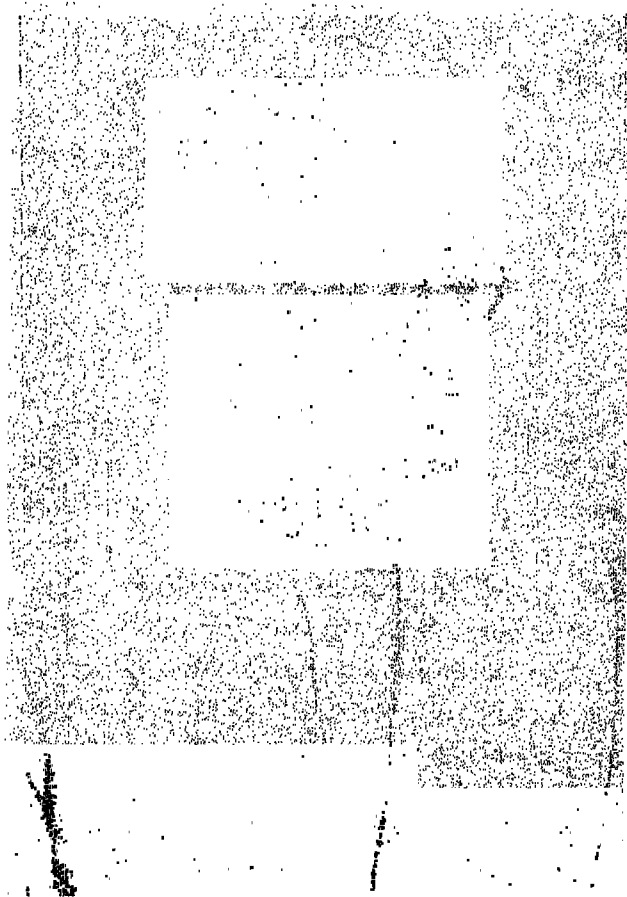
Sri. C. Rajagopalachari

भक्त हैं। उनकी सरलता, सच्चाई और आत्मोत्सर्ग जन साधारण की जबान पर हैं।"

इसी तरह इनकी बुद्धि के विषय में हमारे सरदार वल्लभभाई ने एक बार यह शब्द कहे थे, हम में एक व्यक्ति—राजा जी हैं जिनका दिमाग़ सुलझा हुआ है, और जो स्पष्टता के साथ विचार करता है।" जो भी हो, इतना अवश्य है कि स्व० बापू के विचारों व कथनों की व्याख्या करते समय, उनका स्पष्टीकरण करते समय, सब लोग राजा जी की ही ओर देखते थे। प्रायः ऐसा हुआ है कि महात्मा जी के विचारों के प्रचार करने का भार इन्हीं के कन्धों पर रखा गया है, तथा इस सम्बन्ध में विचारों का आदान-प्रदान तथा पिष्ट-पेषण हमारे 'राजा जी' ही करते रहे हैं।

इतना सब होते हुए भी इनमें कोई विशेष आकर्षण नहीं। मेरा अभिप्राय उनकी शक्ल-सूरत से है। वह एक दुबले-पतले नाटे से व्यक्ति हैं। उनका सफाचट मुड़ा हुआ सिर है। उनका चेहरा-मोहरा भारतीय ब्राह्मणों के अनुरूप है। पहिली बार उन्हें देख कर आप उन्हें भूल जायेंगे। उनमें कोई ऐसी बात नहीं, जो देखने वाले को असाधारण प्रतीत हो। पर नहीं इसमें सब कुछ है। उनकी आकृति को यदि आप ध्यान पूर्वक देखें, तो पता पड़ जायेगा कि वह अगाध हैं। उनकी बाज की तरह ऊपर उठी हुई नाक, अतल से आपकी ओर यों देखने वाली आंखें, आपके मर्मस्थल में घुस कर सब कुछ देख डालेंगी। यदि आप उन्हें इस तरह से देखने लगेंगे, तो फिर कभी भी उन्हें न भूल सकेंगे—चेष्टा करने पर भी। उनके होंठों पर एक विचित्र मुस्कराहट खेलती रहती है। उस मुस्कराहट में संसार के प्रति—विशेषकर अपने विरोधी के प्रति तीव्र और प्रच्छन्न व्यङ्ग है। उनकी भेदभरी मुस्कान से 'मानो यह प्रतिध्वनि निकलती है—तुम हो

कहाँ ? मैं तुम्हारी नस-नस समझता हूँ। समय आने दो—बताऊँगा। मैं क्या समझा ! राजा जी वास्तव में राजनैतिक क्षेत्र में संसार के लोगों के लिए एक रहस्य ही रहे हैं। ऐसे हैं यह हमारे राजा जी !

जन्म तथा प्रारम्भिक जीवन

श्री राजगोपालाचार्य का जन्म तामिलनाड के सलेम जिले में एक वैष्णव ब्राह्मण कुल में सन् १८७६ ई० में हुआ था। इनका नाम श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य है। आप देखेंगे कि इनके सम्बन्ध में 'यथा नाम तथा गुण' वाली कहावत अक्षरशः लागू होती है। यह जहाँ भी रहे, अपना व्यक्तित्व बनाये रहे। इतना ही नहीं, औरों पर भी उसकी छाप डालते रहे। सदैव 'राजा' ही रहे।

जब यह छोटे से ही थे उस समय एक दिन इनके घर एक ज्योतिषी आया। इनके माता-पिता ने उससे इनका भविष्य पूछा। इनका हाथ व इनका जन्म-पत्र देख कर उस ज्योतिषी ने कहा कि "यह लड़का बड़ा भाग्यवान है। किन्तु इसके नक्षत्रों में एक विचित्रता है। यह बड़े से बड़े कष्ट पायेगा, तथा बड़े से बड़े पद को सुशोभित करेगा। यह खूब प्रसिद्धि प्राप्त करेगा।" उस समय चाहे उस ज्योतिषी को झूठा ही समझा गया होगा। पर आज हम देखते हैं कि उस ज्योतिषी की भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य हुई। अपने राज-नैतिक जीवन में—राष्ट्रीय आन्दोलनों के दिनों में इन्होंने बड़े से बड़े कष्ट पाये। अनेक बार जेल जाने के अतिरिक्त, अपने सहयोगी कार्यकर्ताओं द्वारा भी अपमानित हुए। एक समय देश-वासियों ने इन्हें गद्दार तक कह डाला। इन्हें कांग्रेस तक छोड़नी पड़ी। पिछली बार मद्रास के प्रधान मन्त्री न बन सके; परन्तु आज यह हमारे गवर्नर जनरल बने हुए हैं। यह उच्च पद आज तक किसी भी भार-तीय लाल को न प्राप्त हुआ है और न भविष्य में ही प्राप्त हो सकेगा।

राजा जी में प्रारम्भ से ही प्रतिभा का प्रकाश दिखाई देने लगा था। स्कूल और कालेज में यह तेज लड़कों में थे। तर्क करने की शक्ति इनमें शुरू से थी। अतः रुचि के अनुकूल इन्होंने वकालत पास की। परीक्षा पास करते ही इन्होंने सलेम में वकालत शुरू कर दी। पहिले ही दिन से, इनकी वकालत चल निकली। थोड़े दिनों तक सलेम में वकालत करने के बाद यह मद्रास चले आये। यहाँ यह हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। राजा जी यहां के प्रथम श्रेणी के वकील थे। इनकी औसत आय पांच हजार रुपये माहवार थी।

सार्वजनिक जीवन

जनता की सेवा करने की इच्छा इनमें शुरू से ही थी। यों कहिये कि बचपन से ही थी। वकालत शुरू करते ही नागरिक प्रश्नों में दिलचस्पी लेने लगे और थोड़े ही दिनों बाद स्थानीय चुङ्गी के चेयर-मैन हो गये। चेयरमैन के पद से इन्होंने अपने नगर में अनेक सुधार किये। इन्होंने समाज-सुधार के अनेक कार्यों में हाथ बटाया। पाठक, यह न भूल जायें कि उन दिनों भारतवर्ष में इतनी कट्टरता थी कि समाज की रूढ़ियों के सामने मुँह खोलना खतरनाक था—एक अपराध था।

राजनीति में आगमन

सन् १९१७ मे 'होमरूल' आन्दोलन ने भारतवर्ष में एक नई जान डाल दी थी। राजा जी उस लहर से कैसे अछूते रह सकते थे? बस यहीं से राजाजी का सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ होगया था। यह वह समय था, जब जर्मनी का पहिला युद्ध समाप्त हो चुका था—पंजाब के जलियांवाला बाग—जैसे हत्याकाण्ड हो चुके थे। उनके कारण भारतवासियों के कलेजे में एक आग थी, दिलों में एक उमंग

थी, आंखों में एक सुरूर था और प्राणों में एक स्वप्न और पीड़ा थी। इस समय राजाजी की वकालत अपनी जवानी पर थी, साथ ही इनके ऊपर पारिवारिक अनेक बोझे और जिम्मेदारियां थीं। इस समय राजाजी के लिए वह घड़ी आ पहुँची थी कि उनको बाह्य और अन्तः-समन्वयता और शक्ति में से एक को चुन लेना था। राजाजी का ब्राह्मणत्व उठ बैठा। इन्होंने वैभव को ठोकर मार दी और यह त्याग तपस्या का यज्ञ करने के लिए राष्ट्र की मुक्ति के हेतु समराङ्गण में कूद पड़े। यहीं सन् १९२१ में श्री विजयराघवाचार्य जी के मकान पर इस प्रतिभावान वकील की गांधीजी से प्रथम भेंट हुई थी। प्रथम दर्शन में ही दोनों ने एक दूसरे को समझा और ग्रहण किया। तब से दिनों दिन वह सम्बन्ध दृढ़तर होता गया। मतभेद हुए, परन्तु सम्बंधों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, अपितु उनमें एक अनुपम माधुर्य की धारा बहती रही।

तबसे लेकर आज तक राजाजी देश के प्रमुख नेताओं में रहे हैं। वर्षों तक अपरिवर्तनवादी दल के प्रधान नेता, कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य और विविध रचनात्मक कार्यों के जन्मदाता एवं सङ्गठन-कर्त्ता रहे हैं। सन १९३७ के मिनिस्ट्री-काल में यह मद्रास के प्रधान मन्त्री थे। बहुत दिनों तक एक तरह से कांग्रेस की बागडोर इनके हाथ में थी। गत महायुद्ध के दिनों में इनका कांग्रेस महासमिति की नीति से मतभेद हो गया था। इस कारण इन्हें वहाँ से त्याग-पत्र देना पड़ा था। यही वह घटना है जिसकी अभी-अभी हम चर्चा कर चुके हैं। इनका मत था कि कांग्रेस को मुसलिम लीग के साथ मिल कर काम करना चाहिए। पाकिस्तान बनता है तो बन जाने दो। उन्होंने इस सम्बन्ध में बिना कांग्रेस महासमिति से पूछे हुए अपने इस निर्णय का प्रचार करना भी शुरू कर दिया था। इनकी इस कार्यवाही से कांग्रेस महासमिति के सदस्य असन्तुष्ट भी हो गये थे। इनको अपमानित भी

होना पड़ा—परन्तु राजा जी' अडिग रहे। और अन्त में ५ वर्ष बाद सन् १९४७ में वही हुआ, जो सन् १९४२ में 'राजा जी' कह चुके थे। पाकिस्तान बन कर ही रहा। इतना रक्त-पात और ऊपर से हुआ। यदि सन् १९४२ में पाकिस्तान बनता, तो शायद इतनी कटुता भी नहीं होती। किसी ने ठीक ही कहा था कि 'राजा जी का जीवन, भविष्यवाणियों का जीवन है।' उन्हीं दिनों चल रही बातचीत में राजा जी की कूटनीति देखकर बम्बई में डौन अखबार ने इनके विषय में लिखा था कि, "वल्लभभाई शक्ति हैं, तथा राजा जी लेखा-जोखा। राजा जी में अपने विरोधी के मस्तिष्क को समझने की अद्भुत शक्ति है। उनकी भविष्यवाणी प्रायः सत्य ही होती है। वह पहिले से बता सकते हैं कि उनका विरोधी अब क्या करने वाला है। अपने विरोधी की कमजोरियों को वे तुरन्त ही पकड़ लेते हैं।" किसी ने ठीक ही कहा था कि "महात्मा जी की शक्ति और कार्यक्षमता वल्लभभाई, की सेवा और विनय राजेन्द्र बाबू और दिमाग़ और तत्त्वज्ञान राजगोपालाचार्य हैं।" गांधीवाद के बौद्धिक अंश को ही उन्होंने अधिक अपनाया है। यदि गांधीवाद मे कूटनीति के लिए कोई भी स्थान है, तो वह हमें श्री राजा जी में मिल जावेगी। गांधी जी में परम विश्वास रखने वाले को भी यह कहना पड़ता है कि 'श्रद्धा गांधी जी की ओर जाती है, पर बुद्धि राजा जी की ओर झुकती है। कल्याण तो गांधी जी के पथ से ही होगा, पर वर्तमान परिस्थिति में राजा जी ही ठीक कहते हैं।' अतः उन्हें गवर्नर जनरल बनाया जाना सर्वथा उपयुक्त ही है।

जीवन की तीन महत्त्वपूर्ण घटनायें

हम अन्यत्र बता चुके हैं कि राष्ट्र ने सदा ही राजा जी के नाम के सामने एक प्रश्नवाचक चिह्न लगाया है। इस प्रश्न के पीछे घटनाओं

का एक ताँता रहा है। गया में कांग्रेस थी। कौन्सिल में प्रवेश की बात थी। देशबन्धु (दास) तथा पं० मोतीलाल जी नेहरू जैसे दृढ़ नेता कौंसिल-प्रवेश पक्षपाती थे। इन जैसे महारथियों का विरोध करना कोई आसान काम नहीं था। इस कौन्सिल-प्रवेश के प्रस्ताव का राजाजी ने ऐसा घोर विरोध किया कि उसके पक्षपाती—दांत पीस-पीस कर रह गये। उनका बुरा हाल था और राजा जी के व्यंग और कूट युक्त तर्कों की वाण-वर्षा अबाध रूप से अपनी झड़ी लगाए हुए थी। सब लोग आश्चर्य कर रहे थे—खादी में लिपटा हुआ, चश्मा लगाये यह पतला-दुबला आदमी आखिर कौन है। इन्होंने अपने दृढ़ तर्कों के साथ उनका घोर विरोध किया— साथ ही एक दम शान्त थे तथा बीच बीच में मुस्कराते जाते थे। इन्होंने दास और नेहरू जैसे शासक स्वभाव के व्यक्तियों के तर्कों को टुकड़े-टुकड़े कर डाला। देशबन्धु ने इन्हें 'महात्मा का महन्त' कह कर पुकार दिया था। इसी तरह जब सत्याग्रह-युद्ध चल रहा था और राजा जी कांग्रेस के कार्यवाहक अध्यक्ष थे तब भी मन्दिर-प्रवेश बिल के सम्बन्ध में 'खिलौनोसी' व्यवस्थापक सभा के सदस्यों से मिलने, मद्रास गवर्नर से भेंट करने और कनवेसिंग में अपना समय लगाने के कारण देश के कोप-भाजन हुए थे। कांग्रेसी, विशेषकर यू० पी० वालों की अप्रसन्नता के कारण इन्हें इस्तीफा देना पड़ा था।

दूसरी घटना है सन् १९३५ की। राजाजी ने त्रिचनापल्ली के स्थानीय चुनाव को लेकर देश के सामने एक समस्या खड़ी करदी। उन्होंने अनुशासन के विरुद्ध जाने के लिये डा० राजेन्द्रप्रसाद जैसे परखे हुए नेता को कांग्रेस तथा अन्य समस्त सार्वजनिक संस्थाओं से त्यागपत्र देने को विवश किया। इस बात पर इनका शेष कांग्रेस वालों से मतभेद हो गया और फलतः इन्होंने घोषणा कर दी कि "मैं समस्त सार्वजनिक जीवन से अलग हो रहा हूँ।" उस समय

इनका राष्ट्रपति चुना जाना निश्चित था, परन्तु इन्होंने कांग्रेस की अध्यक्षता को ठुकरा दिया। साथियों की एक न मानी, अपने दृढ़ निश्चय से टस से मस न हुए। इन्होंने इस समय आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने का निश्चय कर लिया और उपनिषदों का अध्ययन करने लगे। उपनिषदों की इन्होंने टीका भी लिखी। इस सम्बन्ध में इनके विचार देखिए। वे भी कितने सुलझे हुए हैं:—"मैंने सीधी-सादी भाषा में हिन्दू-धर्म का स्रोत समझाने की चेष्टा की है, ताकि उसे प्रत्येक व्यक्ति जान सके। उपनिषदों को समझने के लिए, उनका ज्ञान होने के लिए, उनका मूल्य आंकने के लिए विशद् कल्पना शक्ति तथा विषय में अवसरानुकूल पैठ सकने की क्षमता अपेक्षित है। उपनिषदों को वही समझ सकता है जो पुराने विचारों तथा आधुनिक तर्कशीलता का समन्वय कर सके......"। राजा जी ने इसी उद्देश्य की पूर्ति की है। आप समझ सकते हैं, कि इनकी विचार-धारा में विश्लेषण का गुण कितने शक्तिशाली रूप में विद्यमान रहता है।

यह तीसरी घटना है उनकी अदालत से सम्बन्धित। जब उनकी वकालत जोरों पर थी। सेलम में एक मुक़दमा करके यह लौट रहे थे। सफर बैलगाड़ी का था। रात हो चली थी। फीस के रुपये एक थैली में बन्द थे। यह उसी बैलगाड़ी में रुपयों की थैली का सिराहना लगाकर सो गये। रास्ते में एक जगह 'मार्ग कर' (Toll Tax) लगता था। वहाँ इनकी गाड़ी रुक गई। गेटमैन ने जोर से आवाज दी। यह चौंक कर जाग पड़े। समझे कि डाकुओं ने गाड़ी घेर ली है। इन्होंने जागते ही, बिना सोचे-समझे, अपना रिवाल्वर निकाल कर तड़ से गेटमैन के सिर में गोली मारदी। वह गिर पड़ा और कराहने लगा। इन्हें तुरन्त ही वास्तविक स्थिति का पता चल गया। झट गाड़ी से कूद पड़े और उसे गोदी में लेटा लिया। तेजी से बैलगाड़ी

दौड़ाई गई। उसे अस्पताल पहुँचाया गया। बड़ी सेवा-सुश्रूषा करके इन्होंने उसे चंगा किया। बाद में अपनी उस थैली के सारे रुपये उसी गेटमैन को भेंट कर दिये। यह देख कर आश्चर्य सा होने लगता है कि आज उन पर गम्भीरता का एक दुर्भेध आवरण है। गांधीजी के प्रभाव एवं वर्षों के त्याग और तपस्यामय जीवन ने उस उतावले पर नियन्त्रण लगा दिया है परन्तु उक्त घटना के मूल में जो संस्कार थे, वे सर्वथा निर्मूल हो गये हों, सो बात नहीं।

जब हमारे सामने ये घटनायें आती हैं, तो हम भूल-भुलैयां सी में पड़ जाते हैं कल वीतराग आज अनुरागी बन जाय और कल तक संन्यास की प्रतिज्ञा पर दृढ़ व्यक्ति आज राजनीति की वेदी पर आसक्त दिखाई दे, तो साधारण व्यक्ति क्यों न उलझन में पड़ जाय। क्या सन् १६२७, १६३२, १६३५, १६३७ तथा सन् १६४२ के राजाजी एक ही हैं? हाँ, वह एक ही हैं। राजाजी नहीं बदले परिस्थितियाँ बदल गईं। उन्हें समझने के लिये यह आवश्यक है कि परिस्थिति के साथ उनका ठीक अनुपात लगाने की हममें योग्यता हो।

राजाजी का काला चश्मा

राजाजी सदैव ही रंगीन चश्मा लगाए रहते हैं। स्वर्गीय देश बन्धुदास ने एक बार कहा था, "C. R'S dark glasses make him see others all right but he can not see himself" अर्थात् "राजगोपालाचार्य का काला चश्मा उन्हें दूसरों को तो ठीक तरह देखने की शक्ति देता है, परन्तु वह स्वयं अपने को नहीं देख सकते।" हम नहीं जानते कि स्वर्गीय देश बन्धु का कथन कहाँ तक सत्य था। हम इतना अवश्य जानते हैं कि किसी से बात करते समय वह दूसरों की आखों में उदय होने वाले भावों को देख सकते हैं, पर

दूसरा नहीं देख सकता कि उनके ऊपर उसकी बातों की क्या प्रतिक्रिया हो रही है। युद्ध-कला में इस फायदे का बहुत महत्त्व है। दूसरों को कुतूहल और रहस्य में डाल देने मे इन्हें एक आनन्द आता है। परन्तु यह सब षडयन्त्र के रूप में नहीं, युद्ध-नीति और व्यूह रचना (stategy and tactics) के रूप में ही होता है?

राजाजी की बुद्धि व वाणी

'स्वदेश मित्रन' के सम्पादक श्री० सी० आर० श्रीनिवासन ने एक बार ठीक ही लिखा था, 'कि उनके जीवन को इनके मस्तिष्क ने ही नियन्त्रित व सञ्चालित किया है। कानून की खराद पर चढ़ कर उसमें उस्तरे की पैनी धार पैदा होगई है। आप उन्हे कभी भी असावधान नहीं पावेंगे। आप उन्हें तर्कभाव के कारण कभी भी हथियार डालते नही पावेंगे। उन्हे कमजोर 'केस' दो, वह उसे मजबूत बना देंगे, उन्हें मजबूत 'केस' दो वह उसे दृढ़तर बना देंगे।'' यही कारण है कि आप इस सीधे से ब्राह्मण में गांधी-युद्ध-कला के चाणक्य का दर्शन पाते हैं। स्वयं गांधी जी भी कभी कभी इनके तर्कों के सम्मुख आवाक् से रह जाते थे। सन १६४६ मे विलायत से भारत में आने वाले कैबिनेट मिशन के नेता के ये शब्द थे कि, 'भारतवर्ष मे राजनीत को सबसे अच्छी तरह समझने वाले व्यक्ति श्री राजगोपालाचार्य ही हैं। वे ही "सबसे अधिक कूट नीतिज्ञ है।''

राजा जी एक मजे हुए तामिल के लेखक हैं। उनकी कहानियां हमें टाल्सटाय की याद दिलाती हैं। उनकी गीता और उपनिषद् की टीकायें बड़ी ही लोकप्रिय हैं। राजा जी एक प्रभावशाली वक्ता है। परन्तु राजा जी को प्रथम श्रेणी के वक्ताओं की वाणी नहीं मिली है। उनकी वाणी में वह शक्ति नहीं हैं जो प्रबल प्रभंजन के समान

चूहों को झकझोर दे। उनकी वाणी की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें किसी भी जटिल समस्या को थोड़े और सरल शब्दों में अत्यन्त सरलता और स्पष्टता के साथ उपस्थित करने की असाधारण शक्ति है। एक लेखक ने ठीक ही लिखा है—"उनमें श्रीमती नायडू की अलंकृत वाग्धारा का प्रभाव है, उनमें स्वर्गीय लाला लाजपतराय की सिंह गर्जना नहीं, उनमें श्री एम० श्रीनिवास ऐयङ्कर की विस्फोटक कल्पना-शक्ति की कमी है, किन्तु किसी केस का एक संक्षिप्त, तीक्ष्ण और चातुर्यपूर्ण सारांश निकाल लेने में—फिर चाहे हो वह आक्रमण में हो या रक्षा में—वह परिपूर्ण हैं।" वास्तव में उनकी वाणी शिशिर की ठन्डी तथा हड्डियों में कम्प पैदा करने वाली हवा के समान है, जो अप्रिय होने पर भी अन्दर तक प्रविष्ट होकर मनुष्य को हिला देती है। राजाजी की बुद्धि बिल्कुल अनावृत है तथा उनमें आत्म-विश्वास कूट-कूट कर भरा हुआ है। एक बार गाँधी जी ने इनके बारे में ये महत्वपूर्ण शब्द कहे थे—राजगोपालाचार्य ही मेरे एक ऐसे अनुयायी हैं जिन्होंने असहयोग आन्दोलन का अध्ययन किया है तथा विवेक पूर्वक मेरा अनुगमन किया है।"पूज्य बापू ने शायद ही इतनी बड़ी प्रशंसा अपने किसी अन्य अनुयायी की की हो एक बार गिरफ्तार होने के समय गांधीजी से एक आदमी ने प्रश्न किया "अपने बाद आप यह काम किसे सौंपेंगे - किसको उत्तराधिकारी बनायेंगे ? गांधीजी ने तुरंत ही उत्तर दिया,अरे यह भी कोई पूछने की बात है। राजाजी है सो सही।"

इतने विभिन्न पदों को सुशोभित करने के बाद अन्तिम दिनों में राजाजी पश्चिमी बंगाल के गवर्नर रहे। वहां जाते समय इनका वहाँ घोर विरोध था। परन्तु बाद में अपनी आंतरिक मधुरता के कारण सर्वप्रिय हो गये। यही हाल आज कल इनका केन्द्रीय सरकार में है। गवर्नर जनरल के पद पर आसीन होने के नाते यह अपने

को जनता का सर्व प्रथम सेवक मानते हैं। ऐसे हैं हमारे बुद्धि का व्यापक सहयोग करने वाले राजा जी।

पं० जवाहरलाल की तरह राजाजी भी पूरे एरिस्टोक्रैट हैं किन्तु इनकी अमीरी बुद्धि की अमीरी है अतः वह अन्तस्थ है। जवाहरलाल की अमीरी परम्परागत और पैतृक है। वह बड़े बेटे हैं। अतः उनकी अमीरी भावना प्रधान है। जवाहरलाल में पश्चिम से पूर्व प्रभावित है, परन्तु राजाजी ठेट भारतीय हैं, उनके सिर की शिखा भारतीय संस्कृति की विजय पताका के रूप में स्थित है, राजाजी ब्राह्मण की क्षमता की साकार मूर्ति हैं। वह भावना को नहीं जगाते, उनकी अपील विवेक से होती है। जवाहरलाल भी विवेक को उभाड़ने की कोशिश करते हैं, परन्तु बोलते-बोलते उनकी भावना फूट ही पड़ती है।

किसी ने सच ही कहा है कि, "यदि ये दोनों मिलकर खड़े हो सकें तो असम्भव को भी सम्भव कर सकते हैं······"। आज परमात्मा के अनुग्रह से ये दोनों एक साथ खड़े ही नहीं हैं, बल्कि साथ-साथ उठते बैठते और सब काम भी करते हैं। निःसंदेह हमारे राष्ट्र का भविष्य आज सर्वथा उज्ज्वल एवं आशापूर्ण है।

: ४ :

कस्तूर बा गांधी--हमारी बा

एक माता ने भारत के लिये अगर एक गाँधी को जन्म दिया तो कस्तूर बाई नाम से पुकारी जाने वाली महिला ने उस गांधी को महात्मा बना कर खड़ा कर दिया। अगर गांधी जी ने हमें एक कस्तूर बा गढ़ कर दी, तो बा ने हमारे लिये एक महात्मा पैदा कर दिया। वह गांधी के साथ गांधी की पत्नी बन कर आयी और चली गई परन्तु हमारे दिलों पर आज दिन तक उसकी मृदुल मूर्ति अंकित है। गांधी जी ने अपने विवाहित जीवन के विषय में 'आत्मकथा' में यह प्रकट किया है—"मैं चाहता था कि मेरी स्त्री एक आदर्श पत्नी बने। मेरी अभिलाषा यह थी कि वह एक शुद्ध पवित्र नारी के समान मेरे ज्ञान को प्राप्त हो, मेरे जीवन और विचारों में अपने को मिला दे।"

परन्तु कस्तूर बा को पोथी और पाठ की आवश्यकता नहीं थी। उनकी आत्मा विकसित थी। जीवन के ज्वार-भाटों में अटल बनी रहने की उनमें अपूर्व शक्ति थी। वस्तुतः शिक्षा देने वाले पति के लिये वह स्वयं, पोथी नहीं, एक पाठशाला थीं। गांधी जी ने कस्तूरबा

को जितना ही अधिक सिखाने की चेष्टा की उतनी ही अधिक शिक्षा वह स्वयं प्राप्त करते चले गये।

बा के बारे में गांधी जी के ये शब्द उल्लेखनीय हैं। इनको पढ़ चुकने के बाद हमारी समझ में आजायगा कि किसी शहंशाह की मलिका, अथवा किसी राज्य को रानी न होने पर भी बा हम लोगों को अपना भक्त बना सकीं। गांधी जी लिखते हैं कि, "वह का ज़बर्दस्त गुण सहज अपनी इच्छा से मुझ में समा जाने को था। यह कुछ मेरे आग्रह से नहीं हुआ था। लेकिन समय पाकर बा के अन्दर ही इस गुण का विकास होगया था। मैं नहीं जानता था कि बा के अन्दर ही यह गुण छिपा हुआ था। मेरे शुरू शुरू के अनुभव के अनुसार बा बहुत हठीली थीं। मेरे दबाव डालने पर भी वह अपना चाहा ही करतीं। इसके कारण हमारे बीच थोड़े समय की अथवा लम्बी कड़ुआहट भी रहती, लेकिन जैसे-जैसे मेरा सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल बनता गया, वैसे-वैसे बा खिलती गई, और पुख्ता विचारों के साथ मुझमें यानी मेरे काम में समाती गई। जैसे दिन बीतते गये, मुझ में और मेरे काम में—सेवा में भेद न रह गया। बा धीमे-धीमे उसमें तदाकार होती गई। शायद हिन्दुस्तान की भूमि को यह गुण अधिक से अधिक प्रिय है। कुछ भी हो, मुझे तो बा की उक्त भावना का यह मुख्य कारण मालूम होता है।

बा में यह गुण पराकाष्ठा को पहुँचा, इसका कारण हमारा ब्रह्मचर्य था। मेरी अपेक्षा बा के लिये वह बहुत ज़्यादा स्वाभाविक सिद्ध हुआ। शुरू में बा को इसका कोई ज्ञान भी न था। परिणाम-स्वरूप हमारा सम्बन्ध सच्चे मित्र का बना। मेरे साथ रहने में बा के लिये सन् १९०६ से, असल में सन् १९०१ से, मेरे काम में शरीक ही जाने के सिवा या उससे भिन्न और कुछ रह ही नहीं गया था।

वह अलग रह नहीं सकती थी। अलग रहने में उन्हें कोई दिक्कत न होती लेकिन उन्होंने मित्र बनने पर भी स्त्री के नाते और पत्नी के नाते मेरे काम में समा जाने में ही अपना धर्म माना। इसमें बा ने मेरी निजी सेवा को अनिवार्य स्थान दिया। इसलिए मरते तक उन्होंने मेरी सुविधा की देखरेख का काम छोड़ा ही नहीं।"

(सेवाग्राम १८-२-४५)

सम्भवतः इसी कारण कस्तूर बा के बारे में गांधीजी को ये शब्द लिखने पड़े थे कि "कस्तूर बा से बिछुड़ना मेरे लिए असह्य था।"

बा का जन्म तथा बाल्यकाल

काठियावाड़ के पोरबन्दर नगर में सन् १८६६ के अप्रेल मास में बा का जन्म हुआ। इनके पिताजी का नाम गोकुलदास मकन जी था। वह पोरबन्दर के एक अच्छे व्यापारी थे।

उन दिनों लड़कियों को पढ़ाने का रिवाज न था। इस कारण हमारी बा भी एक तरह से निरक्षरा थीं। इसके साथ ही इन्हें घर—काम में अच्छी शिक्षा मिली थी। इनके पिता वैष्णव थे। अतः इनका लालन-पालन धार्मिक वातावरण में हुआ था। संकल्प बल तथा संयम का विकास, ये दोनों गुण धार्मिक वातावरण की विशेषताएँ हैं। कहना न होगा कि ये दोनों बातें बा में ठेठ बचपन से ही पाई जाती थीं।

गृहस्थाश्रम

इनकी सात साल की उम्र में सगाई और तेरह साल की उम्र में विवाह हो गया था। यह बापू से उम्र में ६ महीने बड़ी थीं। इस

प्रकार बचपन में ही बा के गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ हुआ। बचपन में शादी हो जाने के कारण दोनों ही नादान थे—वह नादान पति, तथा यह नादान पत्नी। दोनों में बात-बात में झगड़ा होना स्वाभाविक था। उन झगड़ों का वर्णन बापूजी ने अपनी कथा में बड़े ही मार्मिक शब्दों में किया है। उस वर्णन से हम देख सकते हैं कि हालांकि बा पढ़ी-लिखी न थी, परन्तु वह अपनी स्वतन्त्रता व अपने अधिकार को भली प्रकार समझती थीं। एक दक्षिण अफ्रीका में पेशाबदान साफ करने के सम्बन्ध में झगड़े में उन्होंने कड़ककर कहा था, "क्या तुम समझते हो कि तुम्हारी बीबी होने की वजह से मैं तुम्हारे लात घूँसे खाने के लिए बनी हूँ।" बिना पढ़ी लिखी होने से व लम्बी बहस या विशेष तर्क तो नहीं कर सकती थीं, परन्तु अपने मन की बात वह अवश्य कह डालती थीं। इस मामले में वह किसी के दाबे दबती नहीं थीं!

बापू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मैंने एक छोटी सी निबन्ध पुस्तिका में पढ़ा था कि एक पत्नीव्रत पालना पति का धर्म है, और यह बात हृदय में बसी रही। लेकिन इस सद्विचार का एक बुरा परिणाम हुआ। अगर मुझे एक पत्नीव्रत पालन करना है, तो पत्नी को एक पतीव्रत पालन करना चाहिए। इस विचार के कारण मैं एक ईर्षालु पति बन गया——उन्हें चाहिए कि बिना मेरी इजाजत के वह कहीं न जाय। लेकिन कस्तूरबाई इस तरह की कैद सहन करनेवाली थीं ही नहीं। जहां जाना चाहतीं; वहाँ मुझसे बिना पूछे अवश्य जातीं। जितना ही मैं दबाता, उतनी ज्यादा वह आजादी लेतीं और मैं ज्यादा चिढ़ता।" बा के गृहस्थाश्रम में झगड़ों का प्रायः यही कारण रहता। इसके साथ ही अवसर पड़ने पर बा ने कई बार बापू को चेतावनियां भी दीं। इतना सब होते हुए भी इन सारे झगड़ों सारे सवाल जवाब का एक दूसरा पहलू भी था। आगे चलकर बापू

ने स्वयं लिखा है कि, हम हजारों बार लड़े और हर बार अन्त में सुलह और शांति स्थापित हो जाती। अपनी अद्वितीय सहनशीलता के कारण मेरी स्त्री ने सदा विजय पाई।"

सन् १८८८ में इनके पुत्र हुआ, जो जन्म के ३—४ दिन बाद ही इनकी गोद सूनी कर गया। थोड़े ही दिनों बाद इनके दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ। वही आज हीरालाल गांधी हैं। १६ साल की उम्र में बापू विलायत गये। बा ने अपना यह वियोग काल अपनी सास और जेठानी की सेवा में व्यतीत किया। इसी बीच इनकी सास जाती रहीं।

आदर्श पत्नी

बापू जब दूसरी बार अफ्रीका गये, तब बा भी इनके साथ गईं। उनके साथ अपने दो बालक तो थे ही, साथ ही उनके स्वर्गीय बहनोई का भी एक पुत्र था।

अफ्रीका पहुँच कर बा ने बापू का बहुत से कामों में हाथ बटाया और उनकी अपूर्व सेवा की। बापू जी ने एक जगह लिखा है, "अगर मैं अपनी पत्नी के बारे में अपने प्रेम और अपनी भावना का वर्णन कर सकूं, तो हिन्दू धर्म के बारे में अपने प्रेम और अपनी भावनाओं को मैं प्रकट कर सकता हूँ। दुनियां की दूसरी किसी भी स्त्री के मुकाबिले मेरी पत्नी मुझ पर ज्यादा असर डालती है।" कहा जा सकता है कि बापू को अपने जीवन में जो भी ऊंची से ऊंची वस्तु मिली, जो भी प्रेरणा प्राप्त हुई, जो भी मार्ग दर्शन मिला, वह हिन्दू धर्म तथा अपनी पत्नी कस्तूरबाई से मिला। पत्नी के प्रभाव के कारण हिन्दू धर्म को न मानते हुए भी, "बापू ने उसके रहस्य को स्वयं खोज निकाला, और उसके प्रभाव से स्वयं दुनियां की एक धार्मिक-विभूति बन गये। इसी तरह जैसे

जैसे वह अपनी पत्नी—हमारी बा—के गुणों को समझते गये, वैसे-वैसे अपने गृहस्थ-जीवन को धन्य बनाते गये और बापू, सच्चे 'बापू' बन गये।"

(डा० सुशीला नय्यर)।

बा ने सीता के सतीत्व को भावना-जगत से निकाल कर व्यवहार के धरातल पर खड़ा कर दिया। उन्होंने अपने व्यवहार से बता दिया कि राम की सीता केवल कल्पना में रहने वाली स्त्री नहीं, वह हम तुम में से ही एक हैं। प्रत्येक स्त्री सीता हो सकती है और वह है। बात यह है कि प्रेम के लिये अपने को भूल जाने की अचूक तत्परता ही प्रेम की शुद्धता की कसौटी है। कहना अप्रासंगिक न होगा कि बा गांधीजी की प्रेम-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर अमर हो गईं। कहने का सारांश यह है कि "अगर हमें यह जानना है कि गांधीजी के विश्व-व्यापी सिद्धान्तों का निर्माण कैसे हुआ तो हमें चुपचाप कस्तूर बा के इतिहास में डुबकी लगानी चाहिए।"

[श्रीरामकृष्ण]

बापू जी के जीवन का प्रवाह त्याग, वैराग्य और सन्यास की ओर जोरों से बहा जा रहा था। बा ने उसमें कोई रुकावट नहीं डाली। उसको बहने के लिये सदैव ही इष्ट मार्ग दिया। जहां कहीं भी आवश्यकता समझी वहां नम्र सूचना के रूप में बाँध बाँध कर, सविनय प्रतिकार के रूप में उचित रुकावटों की दीवारें खड़ी कीं। ऐसा उन्होंने इसलिये किया कि वह प्रवाह केवल अनुकूल दिशा में ही होकर जाय। इस प्रकार बा ने उन्हें सदैव ही अनिष्ट दिशा में जाने से रोका। इस प्रकार बा ने नम्रता पूर्वक समझाकर, सौम्य आग्रह द्वारा, तथा निरुपाय हो जाने पर अपने आँसुओं द्वारा बापू को कभी भी कर्कश नहीं बनने दिया। बा के कारण ही बापू इतने सरस और प्रेम पूर्ण बने रहे—हमारे विचार से यह कह देना अनुचित न होगा।

हाँ तो पाठक यह तो समझ ही गये होंगे कि बा ने बापू को जीवन से अपने बढ़ने से कभी भी नहीं रोका। उन्हें बराबर आगे ही बढ़ाया। बापू जी स्वयं लिखते हैं। "बा में एक गुण बहुत बड़ी मात्रा में है जो दूसरी बहुत सी हिन्दू स्त्रियों में न्यूनाधिक मात्रा में पाया जाता है। इच्छा से हो या अनिच्छा से ज्ञान से हो अथवा अज्ञान से मेरे पीछे पीछे चलने में उन्होंने जीवन की सार्थकता मानी है, और शुद्ध जीवन बिताने में मेरे प्रयत्न में मुझे कभी नहीं रोका। इसके कारण हमारी बुद्धि शक्ति में बहुत कुछ अन्तर होते हुए भी मुझे यही लगा कि हमारा जीवन संतोषी, सुखी और ऊर्ध्वगामी है।"

गांधी जी के सब कामों में बा हमेशा ही साथ रही हैं। उनके धार्मिक महाव्रतों के समय तो बा उनके साथ हैं; देश सेवा के महाव्रतों को देखें, तो बा उनके साथ हैं, कहने का तात्पर्य यह है कि बापू के साथ बा वैसे ही रही हैं, जैसे काया के साथ छाया। बापू ने स्वयं कहा है कि, "ब्रह्मचर्य व्रत के पालन में बा की तरफ से कभी कोई विरोध नहीं उठा। अथवा बा कभी भी ललचाने वाली नहीं बनी। मेरी अशक्ति अथवा आसक्ति ही मुझे रोक रही थी।"

यह चर्चा तो हम सूक्ष्म में कर ही चुके हैं कि बा एक आदर्श सहधर्मिणी थीं। वैसे स्वभावत: वह बड़ी ही सादी थीं। कपड़ों वगैरह के ठाठ-बाट को त्यागने में 'बा' को शायद बिल्कुल प्रयत्न नहीं करना पड़ा होगा। अपरिग्रह के लिये अवश्य ही कठिन रहा होगा, क्योंकि लड़कों की बहुओं और बेटियों से बा को बहुत मोह था। परन्तु इतना अवश्य है कि 'बा' ने शीघ्र ही अपने मन को मना लिया होगा। मन को मना लेने के सम्बन्ध में 'बा' के गृहस्थ-जीवन की एक घटना इस प्रकार है। बात दक्षिण अफ्रीका के फिनिक्स आश्रम की है। सन् १९१३ की बात है। एक दिन सवेरे ११ बजे के

लगभग मणिभाई पटेल भोजन के लिए बैठे थे। बापू भी थे। उनके पास उनके ही कुटुम्ब के एक बुज़ुर्ग कालिदास गांधी बैठे हुए थे। बा खड़ी खड़ी रसोई घर में सफ़ाई का काम कर रही थीं। वे कालि-दास गांधी पुराने विचार के आदमियों में से थे। उन्हें मालूम था इतने बड़े व्यौपारी की बेटी होने के नाते, तथा एक धनाढ्य परिवार में ब्याही जाने के कारण कस्तूर बाई को नौकरानी का कभी अभाव न रहा होगा। बा को अपने हाथों सब काम करते देख कर श्री कालिदास गांधी, बापू को सम्बोधन करके बोले, भाई, तुमने तो अपने जीवन में बहुत हेर-फेर कर डाला। बिल्कुल सादगी अपना ली। इन कस्तूरबाई ने भी कोई वैभव नहीं भोगा। "मैंने इन्हें वैभव भोगने से रोका कब है?" बापू ने खाते खाते जवाब दिया।

"तो मैंने तुम्हारे घर में क्या वैभव भोगा है?—बा ने हंसकर ताना मारा। बापू ने उसी लहजे में हँस कर कहा, "मैंने तुझे गहने पहिनने से या अच्छी रेशमी साड़ियां पहिनने से कब रोका है, और जब तू ने चाहा तब तेरे लिए सोने की चूड़ियाँ भी बनवा लाया था न?"

"तुमने तो सभी कुछ लाकर दिया, लेकिन मैंने उसका उपभोग कब किया है? देख लिया है कि तुम्हारा रास्ता जुदा है। तुम्हें तो साधु सन्यासी बनना है। तो फिर मैं मौज-शौक़ मना कर क्या करती? तुम्हारी तबियत को जान लेने के बाद मैंने तो अपने मन को मना लिया"—बा ने कुछ गंभीरता पूर्वक उत्तर दिया। (यह घटना 'हमारी बा' पुस्तक से उद्धृत है) 'मैंने तो अपने मन को मना लिया', बस इसी कथन में बा के समूचे जीवन की सफलता की कुंजी है। लेकिन इस प्रकार मन को मना लेने के बाद भी बा ने बापू को कठोर और शुष्क बन जाने से रोका है। महात्मा बनने के बाद भी बा ने उन्हें अपने प्यारे परिवार का बापू बनाए रखा था। इस प्रकार

बा ने बापू के जीवन की महत्ता की वृद्धि में पूरी पूरी सहायता दी। यही बा के जीवन का रहस्य है। इस विभूतिमय दम्पति के जीवन का सच्चा रहस्य ही यह है कि दोनों ने एक दूसरे को ऊपर उठाया।

बा ने किसी बहिन को एक पत्र लिखा था। उसमें अन्तिम शब्द ये थे—"मैं तुम्हारी तरह आजकल के जमाने की नहीं हूँ। खूब आजादी लेना, पति तुम्हारे ताने में रहे तो ठीक, नहीं तो तेरा और मेरा रास्ता अलग है। लेकिन सनातनी हिन्दू को यह शोभा नहीं देता!

पार्वती जी का तो यह प्रण था कि 'जन्मोजन्म' शंकर मेरे पति हों।" इन्हीं शब्दों में बा के पति-प्रेम, तथा हिन्दू-धर्म निष्ठा एवं भारतीय ललना की भावनाओं की छाप स्पष्ट है।

सार्वजनिक जीवन

दक्षिण अफ्रीका से ही बा का सार्वजनिक जीवन आरम्भ होता है। दक्षिण अफ्रीका में तो वह केवल जेल ही गई थीं। लेकिन हिन्दुस्तान में आने के बाद बापू ने जितने भी काम उठाये, उन सब में इन्होंने एक अनुभवी सैनिक के रूप में हाथ बँटाया। बा की सभाओं, जुलूसों आदि जैसे दिखावटी कामों में रुचि नहीं थी। जहाँ कहीं भी रचनात्मक काम होता था, वहाँ बा सब से आगे रहती थीं। अपनी हाजरी, हिम्मत, हमदर्दी तथा लोगों को ढाढ़स बँधाने के लिए यह सदैव ही तैयार रहती थीं!

चम्पारन में खेड़ा का सत्याग्रह चल रहा था। उन दिनों बा ने गांधी जी के साथ खूब भ्रमण किया और वहां की औरतों की अजीब उत्साह पूर्ण भाषण देकर उनमें पूर्ण चेतना भर दी। वहाँ की कई एक बहादुर औरतों ने बा को वचन दिया "जब आप हमारे

लिए इतनी तकलीफें उठाती हैं, तो फिर हम किस लिए डरें। हम भी अब सरकार को एक पैसा भी न दगीं—इत्यादि"।

बापू की गिरफ्तारी और बा का महत्वपूर्ण कार्य

सन १६२२ में स्वराज्य की पहली लड़ाई शुरू हुई। बापू को गिरफ्तार करके ६ साल की सजा सुना दी गई। उस समय बा ने एक सच्ची वीरांगना का रूप धारण कर लिया। उन दिनों दिया गया उनका निम्न संदेश हमें सदैव ही याद रहेगा। वह हमारे इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है।

"आज मेरे पति को ६ साल की कैद हुई है। इस जबरदस्त सजा से मैं थोड़ी सी अस्थिर हूँ, सो मुझे मजूर करना चाहिये। लेकिन हम चाहें, तो सजा की मुद्दत पूरी होने के पहले ही उनको जेल से छुड़ा सकते हैं।

"सफलता पाना हमारे हाथ की बात है। अगर हम असफल हुए तो इसमें हमारा ही दोष होगा। और इसलिये मैं मेरे दुःख में हमदर्दी रखने वाले और मेरे पति के लिये मुहब्बत रखने वाले सभी स्त्री-पुरुषों से प्रार्थना करती हूँ कि वे रात दिन लगे रहकर रचनात्मक कार्यक्रम को कामयाब बनाएँ। रचनात्मक में चर्खा चलाना और खादी पैदा करना ही खास चीजें हैं। गांधी जी को दी गई सजा का जवाब हम इस तरह से दें:—

(१) सभी औरत-मर्द परदेशी कपड़ा पहिनना छोड़ दें और खुद खादी पहिने व दूसरों को पहिनने के लिए समझाएँ।

(२) सभी औरत-मर्द कताई को अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझ लें, और दूसरों को भी वैसा करने के लिये समझाएँ।

(३) सभी व्यौपारी परदेशी कपड़े का व्यौपार करना छोड़ दें।"

बा के उद्गार दिल से निकाले थे। इनका लोगों पर जादू जैसा असर हुआ। जगह-जगह विलायती कपड़ों की होलियां जलने लगीं। चर्खे गूँजने लगे और खादी का प्रचार होने लगा—बा इस समय एक नौजवान का जोश लेकर सार्वजनिक काम करने के लिये निकल पड़ी थीं। वे यही कहतीं थीं—"मुझे आश्रम में चैन नहीं पड़ता। अब तो मुझे, जितना बन पड़े, बापू का काम करना चाहिए। बापू कार्यकर्त्ताओं को गांव में और आदिवासियों के बीच बसने को कह गये हैं। इसलिये मुझे भी गांव में ले चलो। इन सब कामों के लिए बा गांव-गांव में घूमती फिरीं। कभी बैलगाड़ी में तो कभी पैदल। वे बापू के काम में श्रद्धा रखती हुईं अविचल भाव से लोगों को प्रेरणा देती फिरती थीं—"उमड़ते हुए जोश के समय तो सभी कोई साथ देता है। दक्षिण अफ्रीका में भी ऐसी ही नाउम्मेदी छा गई थी, लेकिन बहिनों और खानों में काम करने वाले मजदूर निकल पड़े और जीत हुई। उसी तरह मैं तो सचमुच मानती हूँ कि आखिर सत्य की जीत होने वाली है।" इसके साथ ही इन्होंने समझा बुझा कर हज़ारों आदिवासियों को शराब पीने की आदत छुड़वाई और उन्हें चर्खा कातने और भजन करने में लगादिया।

इसी तरह बा ने सन् १९३० के दांडीकूच व धरासणा के सत्याग्रहों में सक्रिय सहयोग दिया।

सन् १९३० के सत्याग्रह में महात्माजी को पुलिस ने रात के १२ बजे गिरफ्तार किया था। इस समाचार को पाकर बा ने क्या कहा ? "सरकार के पागलपन पर मुझे हँसी आई। गांधी जी को गिरफ्तार करने के लिए आधी रात के वक्त डाका डालने की क्या जरूरत थी ? उनको पकड़ने के लिए इस सारे लश्करी लवाजमे की क्या जरूरत थी ? अब गांधी जी तो गये। यह सरकार की मेहरबानी है जो उन्हें

इतनी देर में ले गई। × × × ————अब तो गांधी जी जो काम हमें सौंप गये हैं, उसे पूरा करना ही हमारा धर्म हो जाता है।————। मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि इस घटना के कारण देश में कहीं कोई अशान्ति न हो। लोगों से भी मिन्नत करती हूँ कि वह अपनी भावनाओं और भक्ति की बाढ़ में बहकर पागल न बनें, बल्कि मर मिटने की अपनी साध को प्रबल बनाकर इस लड़ाई को जारी रखें।

सरकारी नौकरी करने वाले भाइयों! आप लोग कबतक अपनी नौकरी से चिपटे रहेंगे! सिपाही अपने देश भाइयों पर लाठियां चलाते और गोलियां दागते हैं। उन्हें यह हिम्मत कैसे हो आती है? भाइयो! हिम्मत से काम लो। भगवान आपमें से किसी को भूखा नहीं रखेगा। पहिले बेगुनाह और देश भक्ति में पगे हुए बच्चों पर हाथ उठाना और फिर घर जाने के बाद आंखों में पानी भरकर लम्बी आहें छोड़ना इससे फायदा क्या? परमेश्वर का नाम लेकर के हिम्मत से काम लो और नौकरी छोड़ दो। आज इसके सिवा दूसरा और संदेशा मैं क्या दूं? परमात्मा हम सबको शक्ति दें। कितनी मार्मिक है बा की यह अपील! कौन ऐसा पाषाण हृदय होगा, जो बा के इन शब्दों को सुनकर द्रवीभूत न हो जायगा?

इसी प्रकार स्वयं सेवकों को घायल देखकर आप अत्यन्त दुःखी हुई थीं—परन्तु करुणा में बह नहीं गईं। आपने उस समय भी ये वीरतापूर्वक वचन कहकर सबको ढांढस बंधाया था—"ऐसी जबर-दस्त तकलीफें सह लेने के बाद भी उन नौजवानों ने जिस वीरता और उत्साह का परिचय दिया है, उसे देखकर मेरा दिल खुशी से नाच उठा है। सत्य के लिये ऐसे बलिदान का दृष्टान्त तो इतिहास में अकेले एक हरिश्चन्द्र का ही मिलता है।" बा बराबर इसी तरह अन्त

तक स्वतन्त्रता संग्राम में लगी रहीं और देश सेवा करती रहीं। सब पर समान प्रेम और सबकी समान चिन्ता, यह उनके स्वभाव की खूबी थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि उन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा था।

अन्तिम दिन तथा विदा

सन् १९४२ वाला राष्ट्रीय आन्दोलन अपने अमानुषी अत्याचारों के कारण प्रसिद्ध है। बा भी जेल भेज दी गई थीं। यहीं जेल में आगाखां महल में महात्मा जी के प्राण महादेव भाई जाते रहे थे। उनके बारे में बा प्रायः यह कहती थी, "मुझे जाना था और महादेव क्यों गया"? ऐसी वात्सल्य की मूर्ति थीं, वे बा! बापू के उपवासों की समाप्ति के बाद जब सब लोग वहाँ से विदा होने लगे थे, तब बा ने सांस भरकर ये शब्द कहे थे, "यह हमारी आखिरी मुलाकात ही है। मैं यहां से जीते जी बाहर नहीं निकलूंगी।" उन्होंने प्रार्थना का निम्न श्लोक दोहराया—

गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजन प्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानसि केशव।

और बोलीं, "अब तो कृष्ण भगवान इन कौरवों से घिरे हुये हमारे देश की सुध लें तो अच्छा हो। हम दोनों को चाहे जेल में रखें, पर और सबकी रिहाई हो।"

इसी प्रकार चलते समय उन्होंने अपनी बीमारी की हालत में श्री देवदास गाँधी से ये धार्मिक वचन कहे थे—"सेवा ग्राम जैसा भारतीय ढांचा छोड़कर आगाखां महल की ऊंची भयावह दीवारें मेरे मन में बड़ी उदासी उत्पन्न करती हैं।"

बा समझ रही थीं कि हजारों नर-नारी सरकारी जेलों में भेड़ बकरियों की तरह ठूँस दिए गए थे। रात दिन उनकी यही कामना

बनी रहती थी कि सरकार चाहे उन दोनों को आजन्म कैद रखे, परन्तु दूसरों को मुक्त कर दे।

बा को जेल में हृदय का रोग लग गया था। महादेव भाई की मृत्यु के बाद तो वह बढ़ता ही गया। दिसम्बर सन १९४३ में बा की बीमारी ने भीषण रूप धारण कर लिया। २० फरवरी सन १९४४ को गुर्दों ने काम करना छोड़ दिया। परन्तु मनुष्यता के विरोधी ऐमरी और चर्चिल ने उन्हें न छोड़ा। अब उन्हें निमोनिया भी होगया। बा ने दवा पानी लेना भी छोड़ दिया। वह केवल गंगाजल के लिए ही मुँह खोलती थीं।

गांधीजी बराबर बा की सेवा करते रहे। उस हालत में भी गांधीजी को पास देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी। आखिरकार वह क्षण आ ही गया। २२ फरवरी सन् ४४ को सायंकाल ७ बज कर ३५ मिनट पर, लगभग ७५ वर्ष की अवस्था में, सशस्त्र संतरियों के पहरे से छूटकर वह परमपिता परमात्मा की शरण में चली गईं। आज वे वहाँ अपने जन्म जन्म के स्वामी हमारे बापू के साथ विराजमान हैं। आज हम करोड़ों बच्चे अपनी बा से बिछुड़ गये हैं। हमारी गाथाओं, हमारे गीतों और हमारे इतिहास की वीरांगनाओं की मण्डली में वे आज अपने सिंहासन पर देदीप्यमान हैं। धन्य है वह आगाखां का महल जो राष्ट्र की अनमोल याद को समेटकर इतिहास में अमर होगया है।

सरदार वल्लभ भाई पटेल

भारत के लौह—पुरुष

भारतवर्ष के किसानों की आशा सरदार वल्लभ भाई पटेल के बारे में जोना बेली की ये पंक्तियां सदैव ही नवीन हैं:—

Even to the dullosh peasant standing by,
who fasten'd still on him a wondering eye,
he sumed the master spirit of the land"

वल्लभ भाई पटेल कांग्रेस की संगठनात्मक प्रतिभा और शक्ति के प्रतीक हैं। नागपुर, बोरसद बारडोली उनकी दृढ़ सैनिकता—तथा उनके नियन्त्रण के आज भी गाने गाते । वह भारत के लौह-पुरुष हैं तथा स्व० मौ० शौकतअली के शब्दों में 'बर्फ से ढके हुए ज्वालामुखी हैं।" सन १९२१ ई० में जनता को अपना परिचय देते हुए वल्लभभाई ने स्वयं कहा था :—

"मैं छैल छबीला रसिया था। राजनीति में भाग लेने से ताश खेलना हजार गुना अच्छा समझता था। मुझे इस मक्कारी और अखबारापन के व्यापार से घृणा थी। सहसा इस क्षेत्र में गांधी जी प्रकट हुए उन्होंने चमत्कार ही तो किया। मेरी काया पलट गई," सरदार साहब के उक्त कथन में ही इनके जीवन का सम्पूर्ण रहस्य

SARDAR PATEL

छिपा पड़ा है। इस कथन के १२ वर्ष बाद वह हमारे राष्ट्रपति बने और सत्याग्रह सेना का नेतृत्व करने में अद्वितीय सफलता को प्राप्त हुए।

जन्म तथा वंश-परिचय

वल्लभभाई पटेल को एक सैनिक जैसी दृढ़ता अपनी परम्परा से एक विरासत के रूप में मिली है। गुजरात में लवा और कदवा कुरमी जाति की दो उपजातियां हैं। ये लोग अपने को क्रमशः लव और कुश के वंशज बताते हैं। ये दोनों जातियां अपनी वीरता और अपने साहस के लिए प्रसिद्ध हैं। आदमी मार डालना तो ये लोग गाजर और मूली को काट डालना ही समझते हैं। वल्लभभाई लवा उपजाति के हैं। गुजरात के पेटलाद ताल्लुक का करमसद एक गांव है। इसी पवित्र भूमि में करमसद गांव में श्री झवेरभाईके घर ३१ अक्टूबर सन् १८७५ ई० के दिन हमारे लोह पुरुष का जन्म हुआ था। इनके पिताजी एक साधारण आर्थिक स्थिति के व्यक्ति थे। वह कृषि करते थे। परन्तु वह साहस और वीरता में बहुत पढ़े-बढ़े थे। झांसी की महारानी लक्ष्मी-बाई के बुंदेलोंके साथ शामिल होकर उन्होने सन १८५७ के गदर में बड़ी निर्भीकता के साथ अंग्रेजों से लड़ाई लड़ी। फलतः ३ साल तक उनका कोई पता न चला। वह अपने खेतों की हरियाली को सर्वथा भूल सा गये थे। उनमें खतरेके बीच सहसा चमक उठने वाली सैनिक प्रतिभा असीम कष्ट सहिष्णुता, आदि गुण पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुए थे। क्या आश्चर्य है जो सिंह का बेटा सिंह हुआ है ?

शिक्षा

इनके जीवन के पद-चिन्हों को हम बाल-जीवन की पग-डंडियों पर यत्र-तत्र बिखरा हुआ पाते हैं। यह बचपन से ही बड़े नटखट तथा उलझने वाले स्वभाव के थे। इनको बिना बात छूना तक आसान न था!

हम अन्यत्र बता चुके हैं कि इनके पिता खेती करते थे, तथा एक साधारण स्थिति के व्यक्ति थे। वह इन्हें अपने साथ खेत पर ले जाया करते थे। रास्ते में इन्हें पहाड़े याद करा दिया करते थे। इस तरह प्रारम्भिक शिक्षा तो इन्होंने गाँव में ही पाई। बाद को नदियाड के हाई स्कूल में पढ़ने चले गये। वहाँ से बड़ोदा के हाई स्कूल में गये। वहां भी मास्टरों से मुठभेड़ हुई और अन्त में फिर नदियाड आए और यहीं से इन्होंने एण्ट्रेन्स की परीक्षा पास की।

नदियाड के स्कूल का जिक्र है। वहाँ के एक अध्यापक पाठ्य-पुस्तकों का व्यौपार करते थे, और लड़कों से कहते थे कि वे उन्हीं से पुस्तकें खरीदें। वल्लभभाई को यह बात सहन नहीं थी। और इन्होंने इसके विरोध में आन्दोलन उठाया। ५-६ दिन तक स्कूल में हड़ताल रही। अन्त में उन अध्यापक महोदय को ही झुकना पड़ा। स्कूल में मास्टरों से इनकी कई बार अनबन हुई। फलस्वरूप दो बार स्कूल से निकाले गये। और, किसी तरह एन्ट्रेंस पास हो गये।

जीवन—प्रवेश

हमारे चरित नायक को साहित्य-ज्ञान प्राप्त करने की कभी भी इच्छा नहीं थी, परन्तु बैरिस्टर बनने की इनकी बड़ी ही उत्कट अभिलाषा थी। परन्तु घर की आर्थिक स्थिति के कारण यह आगे न पढ़ सके। मुख्यतारी की परीक्षा पास करके गोधरा में मुख्तारी करने लग गये। थोड़े दिनों के बाद बोरसद चले गये। वहां भी इनकी प्रैक्टिस खूब चली। यह प्रायः फौजदारी के ही मुकद्दमे लेते थे। यहीं इनको मनुष्यों के विविध स्वभावों का ज्ञान हुआ। यह बाल की खाल निकालने में बड़ी तत्परता और लगन से काम करते थे। जिरह करने में बड़े पटु थे। अपने मुकद्दमों को तैयार करने में बड़ा परिश्रम करते थे। यहां तक कि इनके मारे अफसर तक हैरान हो जाते थे। इनकी सूझ और

दलीलों से हाकिम दंग रह जाते थे। छोटे २ अफसरों तथा पुलिस के अधिकारियों पर इनका बड़ा आतङ्क था। हसवण्ड नामक एक अंग्रेज छिछोरी प्रकृति का था। बात-बात में तू तड़ाक करने लगता था। कत्ल के एक मामले में बल्लभभाई ने उसे बड़ा तंग किया। उसकी तबियत ठीक करदी। अपनी कानूनी योग्यता से उसे ऐसा पाठ पढ़ाया, जो उसे हमेशा याद रहा होगा।

पत्नी वियोग

जिस दिनों बल्लभभाई गोधरा में मुख्तारी कर रहे थे, उन्हीं दिनों प्लेग के कारण बम्बई में इनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया। एक दिन यह अदालत में एक मुकद्दमा लड़ रहे थे कि उसी समय उन्हें पत्नी के देहान्त का समाचार देने वाला तार मिला। तार को पढ़कर इन्होंने योंहीं मेज पर रख दिया—मानों कुछ हुआ ही न हो। मुकद्दमे का सारा काम खत्म कर चुकने के बाद ही इन्होंने अपने मित्रों में पत्नी-निधन की चर्चा की। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसे समाचार से भी यह विचलित न हुए और बराबर अपना काम करते रहे। कठिन से कठिन समय में भी स्थिर बना रहना, विषम परिस्थिति में भी धैर्य रखना, ये गुण उनमें प्रारम्भिक अवस्था से पाए जाते हैं। इन्हीं के कारण इनका मान है, तथा उनसे लोग डरते हैं।

बैरिस्ट्री

अब बल्लभभाई की मुख्तारी खूब चलने लगी थी। इनके पास रुपया भी इकट्ठा हो गया था। यह वह समय था जब इन्होंने बैरिस्टर बनने की साध पूरी करने की सोची। विलायत जाने के लिए इन्होंने एक कम्पनी से लिखा पढ़ी भी शुरू कर दी। संयोग की बात, कम्पनी का एक पत्र विट्ठल भाई के हाथ पड़ गया। पत्र पढ़ कर बड़े भाई के मन में भी विलायत जाने का प्रलोभन पैदा हो गया और उन्होंने

इनसे कहा, "मैं तुमसे बड़ा हूं इसलिये पहिले मुझे बैरिस्ट्री पास कर आने दो। इसके बाद तुम चले जाना। हो सकता है, तुम्हारे बाद मुझे जाने का अवसर न मिले।" वल्लभभाई अपने बड़े भाई की बात मान गये।

तीन वर्ष बाद जब विट्ठल भाई बैरिस्टर बन कर विलायत से लौट आए, तब हमारे चरितनायक गये। विलायत जाकर न मालूम इनके नटखट पन को क्या हो गया? वहां यह केवल एक परिश्रमी विद्यार्थी के रूप में दिखाई पड़े। जब तक रहे तब तक बराबर पढ़ते रहे। यहां तक कि अपने निवास-स्थान से ११ मील दूर स्थित मिडिल-टेम्पुल के पुस्तकालय में जाकर दिन भर, सुबह से शाम तक, पढ़ा करते थे। वहीं दूध-रोटी मँगा कर खा लेते थे। इन दिनों इन्होंने एक एक दिन में सत्रह-सत्रह घण्टे अध्ययन किया। इस सबका परिणाम यह हुआ कि बैरिस्ट्री में यह सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए। इन्हें ५० पौंड की छात्रवृत्ति मिली और चार वर्ष की फीस माफ कर दी गई। इनके उत्तरों को पढ़ कर परीक्षकगण चकित रह गये। इनकी प्रतिभा पर मुग्ध होकर एक परीक्षक ने चीफ जस्टिस स्काट के नाम इन्हें एक शिफारिशी पत्र दिया था। उसमें लिखा था ऐसे योग्य व्यक्ति को न्याय-विभाग में किसी ऊंचे पद पर रखना चाहिए।

विलायत में वल्लभभाई जी का जीवन बड़ा ही सरल था। वहां पर यह केवल पढ़ने में ही लगे रहते थे। किसी खेल, तमाशे, नाटक-सिनेमा आदि में कभी भी नहीं जाते थे। वहां पर यह बिल्कुल हिन्दुस्तानी ढंग से रहा करते थे। आश्चर्य की बात है कि बैरिस्ट्री पास करके ही यह भारतवर्ष लौट आये। एक दिन भी यूरोप घूमने-देखने आदि के लिए न रुके।

विलायत से लौट आने के बाद इन्होंने अहमदाबाद में बैरिस्ट्री

शुरू की। थोड़े ही दिनों में इनकी धाक जम गई। इन्होंने रुपया तो खूब कमाया ही; साथ ही ख्याति भी प्राप्त की। इन दिनों इनका जीवन बड़े ठाट-बाट का था। वह सोलह आनो पाश्चात्य रहन-सहन में सराबोर थे। उनका जीवन एक नवशिक्षित नवयुवक का, ऐशो-आराम का, जीवन था। एक बार गुजरात क्लब में इन्होंने स्वयं कहा था, "मैं दुर्गा-पूजा के दिन सैर सपाटे और आनंद-विनोद में गुजारता था। उस दिन मैं मानता था कि इस अभागे देश के निवासियों के लिए यही आवश्यक है कि वे विदेशियों का अनुकरण करें। मैं जो कुछ शालाओं में पढ़ता था, उन दिनों मेरा मन एक ही निष्कर्ष निकाल सका कि "हमारे देशवासी हलके और ना समझ हैं और हम पर राज्य करने वाले विदेशी हमारे हित-चिन्तक, उद्धार-कर्त्ता और उच्च जीवन के लोग हैं। हमारे देशवासी तो केवल गुलाम रहने योग्य हैं। इसलिये तालीम का जहर आज सबको पिलाया जा रहा है।"

गांधी जी का प्रभाव

इन दिनों इनके बड़े भाई श्री विट्ठल भाई की भी बैरिस्ट्री जोरों पर थी। वह सार्वजनिक कामों में भी भाग लेने लगे थे। इन्हें लोकोपयोगी तथा सार्वजनिक कार्यों में विशेष रुचि नहीं थी। दोनों भाइयों ने मिलकर यही तय किया कि बड़े भाई तो राजनैतिक एवं सार्वजनिक क्षेत्र में आयें और हमारे चरितनायक घर का पालन-पोषण करें।

वल्लभभाई के जीवन की गति अपने आप में मस्त रहने वाली थी। इन्हीं दिनों गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से लौटकर आ गये थे। इन्हें गांधीजी की बातें सुहाती न थीं। इनके सिद्धान्त इन्हें अव्याव-हारिक लगते थे। एक बार गांधीजी पर व्यंग छोड़ते हुए इन्होंने

अपने मित्रों से ये शब्द कहे थे, "गांधी जी क्यों इन लोगों के सामने ब्रह्मचर्य की बातें कर रहे हैं। यह तो भैंस के सामने भागवत सुनाने की सी बात है।"

एक बार गांधी जी ने आकर क्लब में व्याख्यान दिया। वल्लभभाई को इतना बुरा लगा कि वह उठकर अलग एक कोने में जा बैठे और ताश खेलते रहे। उनके मुँह पर गाँधी जी के प्रति उपेक्षामय एवं उपहासप्रद मुस्कराहट थी। परन्तु ज्यों-ज्यों गुजरात के राजनैतिक जीवन में गांधीजी अधिक भाग लेने लगे, त्यों-त्यों वल्लभभाई का ध्यान उनकी ओर आकर्षित होने लगा।

सबसे पहिले गोधरा में इनका गांधीजी का साथ हुआ। उन दिनों गुजरात में फैली हुई बेगार-प्रथा को तय करने के लिए गोधरा में एक प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेंस हो रही थी। गांधीजी इसके सभापति थे। हमारे चरितनायक उसके मन्त्री चुन लिये गये। वल्लभभाई ने इस पद पर रह कर बड़ी ही योग्यता से काम किया। इन्होंने कमिश्नर के नाम एक पत्र लिखा। यह एक तरह का नोटिस था कि यदि सात दिन के अन्दर उत्तर न आ जायेगा तो हाईकोर्ट के फैसले के आधार पर यह घोषित कर दिया जायगा कि बेगार प्रथा गैरकानूनी है। सात दिन पूरे होने के पहिले ही कमिश्नर ने वल्लभभाई को बुलाकर बात की और मामले को सुलझाकर शान्त कर दिया। यह समाचार पाकर गांधीजी बहुत खुश हुए और उनके हृदय में वल्लभभाई को अपनाने के भाव अंकुरित होने लगे।

सत्याग्रह में प्रवेश

चम्पारन से लौटने के बाद गांधीजी ने खेड़ा का सत्याग्रह छेड़ा। एक दिन गांधीजी ने पूछा "मेरे साथ खेड़ा चलने को कौन तैयार है?" उत्तर में हमारे सरदार का नाम पहिला था। बस उसी दिन

से यह रणक्षेत्र में कूद पड़े। जीवन बदल गया। इस सत्याग्रह के सम्बन्ध में यह गांव २ घूमे। किसानों के घर २ में इन्होंने सत्याग्रह का संदेश पहुंचाया। किसान उठ खड़े हुए तथा सत्याग्रह सफल हुआ। बस इसके बाद ही रौलेट एक्ट बना; जलियां वाला बाग हुआ आदि। यह भी आन्दोलन की आंधी में उड़ गये। तब से लेकर आज दिन तक इन्होंने न मालूम कितने युद्ध किये हैं, न मालूम कितने कष्ट सहे हैं, कितनी बार जेल गये हैं।

शुरू शुरू के दिनों में ही इन्होंने कई एक सत्याग्रहों में संगठन का कार्य किया। इतने सुन्दर संगठन कर्त्ता थे कि प्रत्येक सत्याग्रह में विजयी हुये। नागपुर का सत्याग्रह, बोरसद का सत्याग्रह, बारडोली का सत्याग्रह—ये उल्लेखनीय नाम हैं। इनमें बारडोली का सत्याग्रह सबसे अधिक महत्व रखता है। यह बारडोली के वीर विजेता कहे जाते हैं।

बारडोली का सत्याग्रह

बारडोली के सत्याग्रह ने ही इन्हें सर्व भारतीय रूप दिया। यह संग्राम सन् १९२७ में लगान के प्रश्न को लेकर आरम्भ हुआ था। मालगुजारी में वृद्धि कर दी गई थी। किसानों ने निश्चय किया कि बढ़ा लगान न दिया जाये। लोग वल्लभ भाई के पास पहुंचे। इन्होंने साफ कह दिया सिर्फ बढ़ा हुआ लगान रोकने से काम नहीं चल सकता। इसे सत्याग्रह नहीं कह सकते। सब से पहिले अपने दिलों को तौल लो और जमीन जायदाद का मोह छोड़ सको तो सत्याग्रह में पड़ो।"

बाद में भ्रमण कर इन्होंने किसानों को सब तरह तैयार करके, सत्याग्रह छेड़ दिया। इस सत्याग्रह की लड़ाई में वल्लभभाई ने अपनी बुद्धिमत्ता, कार्यशक्ति, संगठन शक्ति तथा चतुराई का वास्त-

त्विक परिचय दिया। इनके संगठन की चतुराई देखकर भारतवर्ष में ही नहीं विदेशों में भी इनकी प्रसंशा हुई।

बल्लभभाई के इस सत्याग्रह में लगान वसूल करने वालों की बड़ी दुर्दशा होती थी। उन्हें न कहीं खाना मिलता था और न पीने को पानी। जिस गांव में पहुँचते थे, वहीं सुनसान दिखाई देता था और घरों पर ताले लटकते दिखाई देते थे। जब्त किये हुए माल को खरीदना तो दूर रहा, उस माल को ढोने वाले मजदूर तक कहीं नहीं मिलते थे। सरकार ने तरह-तरह के अनेक कठोर दमन भी किये, परन्तु किसानों का साहस कम न हुआ और वे अपने अधिकारों के लिये अड़े रहे।——कहना न होगा कि अन्त में सत्याग्रह सफल हुआ और हमारे चरितनायक विजयी हुए। बस, तब से ही इनकी गिनती देश के बड़े नेताओं में होने लगी।

इसके बाद इनका रचनात्मक कार्य प्रारम्भ हुआ। आन्दोलन, गिरफ्तारी, रिहाई—बस यही सिलसिला चलता रहा। सन् १९३१ में करांची में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन के यह सभापति चुने गये। सारे देश ने एक स्वर से इन्हें अपना राष्ट्रपति पुकारा। इस समय तक 'पूर्णस्वतन्त्रता' वाला प्रस्ताव पास हो चुका था। उसे कार्यान्वित करने के लिए इनकी संगठन-शक्ति अपेक्षित थी!

व्यक्तित्व

यह तो हम ऊपर बता ही चुके हैं कि यह कैसे दृढ़ निश्चय के आदमी हैं। कहना न होगा कि ऐसे ठाठ-बाट की बैरिस्ट्री को छोड़ कर इस संग्राम के हेतु यह फ़क़ीरी बाना स्वीकार करना भी इनके जीवन का बहुत बड़ा निश्चय रहा होगा। सन् १९३१ में कौंसिल प्रवेश के विरोध में इन्होंने दास और अपने भाई के भी दांत खट्टे कर दिये थे। और सन् १९३७ में जब कौंसिल-प्रवेश की बात आई,

तो आप कांग्रेस पार्लियामेण्टरी उपसमिति के अध्यक्ष बने। इस पद से आपने बड़ी ही दृढ़ता पूर्वक ८ प्रांतों की कांग्रेसी सरकारों का संचालन किया। चुनाव के समय आपने दौरा करके पूरे देश में एक नये ही जीवन की लहर दौड़ा दी थी, "जब कांग्रेस के स्टीम रालर चलेंगे तब विरोधी कंकड़-पत्थर के समान कुचलकर चौरस हो जावेंगे।" आप वास्तव में हैं ही ऐसे। आपका आदर्श है—

"शूर संग्राम को देख भागे नहीं, देख भागे सोई शूर नहीं"। महात्मा जी के बाद कांग्रेस में वल्लभभाई का दूसरा नम्बर है। इसके यह अर्थ नहीं हैं कि अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा वे अधिक सर्व-प्रिय हैं, अथवा अधिक दूरदर्शी तथा प्रतिभावान् हैं। लोक प्रियता में जवाहर से बहुत पीछे हैं, तथा बुद्धिमत्ता में वह राजाजी से मीलों पीछे हैं। परन्तु अपनी नियन्त्रण-शक्ति के कारण उनका स्थान अद्वितीय है। अमेरिका के प्रसिद्ध लेखक और पत्रकार लुईफिशर ने इनके बारे में कहा था, 'कि गांधीजी व जवाहरलाल के नेतृत्व म चलाने वाली कांग्रेस के वल्लभभाई पटैल राजनैतिक कर्णधार (मुख्य Political boss of the Gandhi Nehru led Indian National Congress) इनमें पार्टी बन्दी करने की अद्भुत क्षमता है। वह यह काम अच्छी तरह जानते हैं। कि अपना पक्ष किस प्रकार सफल बनाया जाये, तथा विरोधी को किस प्रकार हराया जाये। जिस किसी ने भी कांग्रेस में हमारे चरितनायक का विरोध किया है वह दूध की मक्खी की तरह कांग्रेस से निकाल दिया गया।

सरदार पटेल ने महात्माजी को अपनाया अवश्य, परन्तु वह उनके समान साधक और शिक्षक नहीं बने। प्रारम्भ से अन्त तक वह एक सच्चे और वीर योद्धा ही बने रहे हैं। आदर्श सत्याग्रही की भांति अपने को शून्य में नहीं मिला सकते। वह सदैव ही जीवन

का व्यवहारिक पक्ष ही अपनाते रहे हैं। मुस्लिम लीग के नेताओं के व्याख्यानों और उनकी नीति के कारण जो जगह २ पर दंगे और रक्त पात हुए उनका जवाब आपने बड़े ही कठोर तथा क्षोभपूर्ण शब्दों में दिया था, 'मुसलमान यह न समझें कि लोग उनके भाले और तलवार से डर जायेंगे। बल्कि आत्म रक्षा के लिये हिन्दू भी तलवार का जवाब तलवार से देंगे। इन्हीं सब कारणों से भारतवासी उन्हें अपनी आशा समझते हैं।

आप अनुशासन के उपासक हैं। अनुशासन उल्लंघन के अपराध में बड़े से बड़े व्यक्तियों को आपका कोप भाजन होना पड़ा है। आप जब बोलते हैं, तब विरोधियों के लिए मानों आग उगलते हैं। कोरे जोश तथा दिल बहलाव के लिए उनका भाषण सुनने वालों को कई बार इनकी कड़ी फटकार सुननी पड़ी है। विद्यार्थियों के जोश को तो इन्होंने कई बार सोडा वाटर की बोतल का उफान कहा है। यही कारण है कि इनसे भाषण का आग्रह करते हुए लोग घबराते हैं।

हमारे चरितनायक को खतरे से प्रेम है। यह आग से खेलने को हमेशा तैयार रहते हैं। बारडोली सत्याग्रह के पूर्व किसानों की एक सभा में आपने कहा था, "मेरे साथ कोई खिलवाड़ नहीं कर सकता। मैं किसी ऐसे काम में नहीं पड़ता, जिसमें कोई खतरा या जोखिम न हो। जो लोग आपत्तियों को निमंत्रण दें, उनकी सहायता के लिये मैं सदा तैयार हूँ"।

बचपन से लेकर आज तक इस वीर पुरुष के हृदय में लोहा ठंडा नहीं हुआ है। विरोधी को सामने आने दीजिये, खतरा उपस्थित होने दीजिये, फिर देखिये—इनकी वाणी में से आग ही आग निकलने लगती है। उस समय वह एक ज्वालामुखी का रूप धारण कर लेते हैं अन्यथा वह मौन हैं।

बचपन में एक बार इनकी कांख में एक फोड़ा हुआ। किसी ने दवा बताई कि लोहा गर्म करके भोंक दो। लोहा गर्म हुआ भोंकने वाले ने उसे हाथ में लेलिया! पर इस बालक की कोमलता देखकर वह सहम गया। इस हिचकिचाहट को देखकर हमारे बालक वल्लभभाई बोले, क्या देख रहा है, भाई! लोहा ठंडा हो रहा है या तुझ से नहीं बनता तो मैं भोंक लूं। साहस की यही स्वर्ण रेखा आज तक अविच्छिन्न चली चली आई है। उनके दिल में यह लोहा आज तक ठंडा नहीं हुआ है। वीरता इनकी देवी है और साहस उनका अनुचर। एक बार इन्होंने स्वयं कहा था, "लड़ते २ मुझे जो संकट और उलझन पड़ जाये उसे मैं तड़ाक सुलझा लूंगा! ऐसी उलझने सुलझाने की सूझ मुझे कहाँ से मिलती है, मैं नहीं जानता। परन्तु समझौते की ढीली चर्चाओं में मेरा जी नहीं लगता। ऐसी अकर्मण्य चर्चाओं में कितनी ही बार तो मैं गड़बड़ में पड़ जाता हूँ।"

वल्लभभाई पटेल गांधी जी व लोकमान्य के सम्मिश्रण हैं। वह अपने बारे में बहुत कम बोलते तथा लिखते हैं। यह ऊपर से रूखे, निष्ठुर और अभिमानी से लगते हुए भी भीतर से कोमल, सरल और निराभिमान हैं।

आजकल आप हमारी केन्द्रीय राष्ट्रीय सरकार के उपप्रधान मंत्री हैं। रियासतों का सफल संगठन बारडोली-सत्याग्रह के समान ही इनकी कार्य-क्षमता का परिचायक है। इसी पद से आपने चर्चिल को मुंह तोड़ जवाब दिया था, "आप लोग यह सोचकर बोलना सीखें कि अब आप एक स्वतंत्र भारत से बात कर रहे हैं'।

उनका कठोर मुख, दृढ़ जबड़े, शत्रु को ललकारती हुई आंखें जिनमें व्यङ्ग और ज़हर भरे हुए दिखाई पड़ते हैं, को देखकर एक अंग्रेज पत्रकार ने ठीक ही लिखा है कि, "उनकी मुख मुद्रा से उनकी आन्तरिक शक्ति का पता चलता है।" उनकी वाणी के दो नमूने देख

लीजिये—'शत्रु का लोहा भले ही गरम हो जाये परन्तु हथौड़ा तो ठन्डा रह कर ही काम दे सकता है'। बारडोली के किसानों से कहे हुए आपके ये शब्द स्मरणीय हैं, "किसान होकर यह बात मत भूल जाना कि बैशाख-जेठ की भयंकर गर्मी के बिना आषाढ़ की वर्षा नहीं होने वाली है। सिपाहियों को मरने मारने वाली तालीम देने में सरकार को छः महीने लगते हैं। हमें तो सिर्फ मरना ही सीखना है, उसमें तीन महीने भी क्यों लगाने चाहिए। सरकार यदि जेल में मेहमान चाहती है तो आप मुँह मांगे मेहमान देना।" इसी तरह और भी, "सरकार यह समझ ले कि मेरे पंख काट देने से मैं बिना पंखों वाला हो जाऊँगा, तो मैं यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि वे तो वर्षा की घास की भांति नित्य नए उगते जाने वाले हैं। बात-शूर उन्हें लुभा नहीं सकता। चाणक्य की भांति वह शत्रु को समूल नष्ट कर देने वाले हैं। इतना होते हुए भी उनका हृदय नवनीत की तरह कोमल है। किसान का दिल उन्होंने खूब अच्छी तरह देखा है। उसके कष्टों को देखकर वह मोम की तरह पिघल पड़ते हैं। काका कालेलकर ने ठीक कहा है, "जब किसान व्याकुल होने लगता है, तब वल्लभभाई का भी खून खौलने लगता है।" थोड़े में उनका स्वभाव यह है कि,

'बज्रहु चाहिम कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।'

ऐसे हैं हमारे सरदार पटेल! आप कांग्रेस के सच्चे पहरेदार भारतमाता के लाडले सपूत, सुदृढ़ संगठन कर्त्ता व अद्भुत कार्य कुशल नेता हैं। जनता को आपकी सचाई तथा देश भक्ति में पूर्ण विश्वास है।

: ६ :

डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद--बिहार के गांधी

श्री राजेन्द्रबाबू महात्मा जी के अनन्य भक्तों में से हैं। । 'जीवित श्रद्धा और मूर्ति सेवा' के प्रतिरूप बाबू राजेन्द्र प्रसाद का जन्म सम्वत् १९४१ अगहन मास की पूर्णमासी तदनुसार तारीख ३ दिसम्बर सन् १८८४ को बिहार के सारन जिले के एक प्रतिष्ठित कायस्थ (श्रीवास्तव) परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम मुंशी महादेव सहाय था। वह एक अच्छे ज़मीदार थे और यह अपने पिता के सब से छोटे पुत्र थे। वैसे इस परिवार के पूर्वज आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व फतहपुरसीकरी (आगरा) में रहा करते थे। हमारे चरितनायक पर उनके बड़े भाई स्व० बाबू महेन्द्रप्रसाद का अधिक प्रभाव पड़ा था।

राजेन्द्र बाबू भीतर से महान् हैं, परन्तु ऊपर से अपनी सरलता के कारण कुछ अटपटे से लगते हैं। अगर कोई व्यक्ति इन्हें पहिले से जानता न हो तो बहुत सम्भव है, वह इन्हें एक साधारण देहाती ही समझने लगे।

जीवन-कथा

सन् १८९३ में यह छपरा स्कूल में भर्ती हुए 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' इन पर अक्षरशः लागू होती है। शुरू से ही यह

पढ़ने में बहुत तेज़ थे सदैव ही सर्वप्रथम उत्तीर्ण होते थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा एक मौलवी के द्वारा फ़ारसी और उर्दू की थी। सन १९०२ में इन्होंने कलकत्ता युनिवर्सिटी की एण्ट्रेन्स की परीक्षा पास की और सर्व प्रथम रहे। पाठक, समझ लें कि उस समय बंगाल और बिहार दोनों सूबे एक कलकत्ता युनिवर्सिटी में ही शामिल थे। इण्टर की परीक्षा में भी वही सम्मान प्राप्त हुआ। सन १९०६ में बी० ए० पास किया—उसमें भी सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए। इसके बाद सन १९०७ में एम० ए० (अंग्रेजी) में पास किया और मुजफ्फरपुर के ग्रीयर कालेज में अध्यापक नियुक्त हुए। इन्होंने वकालत भी पास करली थी। एक वर्ष अध्यापक रहने के बाद वकालत करने के विचार से कलकत्ता चले गये।

यहां यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि राजेन्द्रबाबू केवल किताबी कीड़े ही नहीं थे। वह खेलने कूदने में भी बड़े तेज थे। वह अपनी फुटबौल टीम के कप्तान थे। पढ़ने के वक्त जी तोड़ कर पढ़ते और खेलने के समय सब कुछ भूल कर खेलते थे। अपने समय का पूरा-पूरा हिसाब रखना, तथा आलस्य व निष्कर्मण्यता में समय व्यतीत न करना ही इनका ध्येय था। इन्हें शुरू से व्याख्यान देने का भी शौक था। स्कूल कालेजों की सभाओं में प्रायः इनके भाषण हुआ करते थे, तथा यह अखबारों में कभी कभी लेख भी लिखा करते थे। इन्हें हिन्दी से शुरू से प्रेम था। हालांकि इनकी मातृभाषा उर्दू थी परन्तु इतना सब होते हुए भी इन्होंने हिन्दी को ही अपनी मातृभाषा माना और बी० ए० में हिन्दी ही ली। डा० राजेन्द्रप्रसाद ७ भाषाओं के पण्डित हैं। वह ७ भाषाएं बहुत ही अच्छी तरह लिख व पढ़ सकते हैं।

इस प्रकार एक प्रतिभावान विद्यार्थी की छात्रावस्था व्यतीत करने के बाद आपने जीवन में प्रवेश किया। आप क्रमशः अंग्रेजी,

इतिहास और अर्थशास्त्र के प्रोफेसर रहे। बाद को पटना हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। इनकी वकालत खूब चली और हज़ारों रुपये महीने की आमदनी थी। इनका स्वभाव प्रारम्भ से अत्यन्त सरल था और लोक-सेवा के अंकुर इनके भीतर बाल्यकाल में ही उत्पन्न हो चुके थे। अतः यह स्वाभाविक ही था कि इनकी आय का बहुत बड़ा भाग सार्वजनिक कामों में खर्च हो जाया करता था। सम्भवतः कुछ लोगों को यह जानकर आश्चर्य हो कि सन् १९२० में जब अपनी वकालत छोड़ कर यह असहयोग आन्दोलन में कूदे, उस समय इनके बैंक एकाउन्ट में केवल १५ रु० ही थे। हमारे देश के रत्नों के लिए यह कोई अनहोनी बात नहीं। तब से लेकर आज दिन तक यह बराबर देश-सेवा में संलग्न हैं।

लोक-सेवा के भाव

जिन दिनों यह कालेज में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, उन दिनों बंगाल के दो टुकड़े करने की बात चल रही थी। इसी के विरोध में बंग भंग आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। राजेन्द्रबाबू ने उसमें तथा स्वदेशी प्रचार के आन्दोलन में खूब भाग लिया—राजनीति की ओर झुकाव शुरू से ही था। जो जागृति बंगाल के नवयुवकों में थी, वह इन्होंने आकर बिहार के नवयुवकों में भी उत्पन्न करदी।

राजेन्द्रबाबू पटना विश्वविद्यालय की सीनेट के मेम्बर थे। स्वदेशी आन्दोलन के दिनों में इन्होंने इस पद से त्यागपत्र दे दिया और राष्ट्रीय विश्वविद्यालय—पटना विद्यापीठ की स्थापना की। इसमें लगभग ६५० संस्थायें सम्मिलित थीं, तथा ६२००० विद्यार्थी पढ़ते थे। हमारे चरित्रनायक इसके वायसचांसलर थे। इनके संरक्षण में यहां विद्यार्थियों में राष्ट्रीय विचारधारा भरी जाती थी। असहयोग आन्दोलन के दिनों में सबसे अधिक स्वयंसेवक इसी

संस्था से आए थे। सरकारी दमन के समय इस संस्था को सबसे अधिक सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा था। इसे अवैधानिक करार दे दिया गया। इन्हीं के प्रयत्नों के फलस्वरूप बिहारी छात्र सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन स्व० सैयदशुरु्द्दीन की अध्यक्षता में हो सका था।

इनकी प्रतिभा की ख्याति से स्व० गोखले बहुत अधिक प्रभावित हुए थे। सन् १६३० में उन्होंने इनको अपने भारतीय सेवक संघ (servants of India Society) में शामिल होने के लिये आमान्त्रित किया इनमें भी गोखले के प्रति बड़ी ही भक्ति थी। यह तुरन्त तैयार होगये। किन्तु बड़े भाई के अनुरोध के कारण इन्होंने अपना विचार बदल दिया उस समय इन्होंने अपने बड़े भाई साहब स्व० महेन्द्र बाबू के नाम एक पत्र लिखा था। उन पत्र में सार्वजनिक सेवा के प्रति इनकी निष्ठा एवं मानसिक झुकाव का पता चलता है। प्रारम्भ से ही इनका जीवन देश सेवा की ओर चल रहा था, यह इस पत्र से अच्छी तरह स्पष्ट है। उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है। पत्र अंग्रेजी में था। उसका अनुवाद निम्न है

"भैया" मैं एक भावुक व्यक्ति हूँ। अतः आपसे आगने-सामने बैठकर बात नहीं कर सकता। मुझे एक महत्वपूर्ण एवं उच्चतर आवाहन की अनुभूति हो रही है। कठिनाई के समय आपको यों छोड़ देने म मेरी अकृतज्ञता हो सकती है किन्तु मेरा प्रस्ताव है कि ३० करोड़ भारतवासियों के लिए आप यह उत्सर्ग करें। श्रीयुत गोखले के संघ में सम्मिलित होने में मेरा अपना तो कोई त्याग है नहीं। बुरा या भला मुझे ऐसी शिक्षा का लाभ मिला है कि मैं अपने को प्रत्येक परिस्थिति के अनुकूल बना सकता हूँ। मेरी रहन सहन इतनी सादी रही है कि मुझे आराम के किसी विशेष साधन की आवश्यकता नहीं है। मुझे जो कुछ संघ से मिलेगा मेरे लिये पर्याप्त होगा। अतः मेरे

लिये इसमें त्याग की कोई बात नहीं है। परन्तु मैं यह नहीं कह सकता कि इसमें आपको कोई त्याग न करना पड़ेगा। आपने मुझ पर बड़ी बड़ी आशाऐं लगा रखी हैं। उन आशाओं का एक क्षण भर में अन्त हो जायगा। किन्तु इस अनित्य संसार में धन' मर्यादा, यश सबका अन्त हो जाता है। ज्यों ज्यों हम धनी होते जाते हैं। त्यों-त्यों धन की तृष्णा बढ़ती जाती है। दूसरे लोग समझते हैं कि धनवान् अपने धन को लेकर सुखी है, परन्तु जानने वाले जानते हैं कि आनन्द बाहर से नहीं, हृदय के अन्दर से उत्पन्न होता है। अपने थोड़े से रुपयों को लेकर एक दरिद्र, लाखों रुपये वाले धनिक से अधिक तृप्त है। अतः हमें ग़रीबी से घृणा न करनी चाहिए। संसार के महत्तम व्यक्ति अत्यन्त दरिद्र रहे हैं और प्रारम्भ में उन पर सदा अत्याचार हुए हैं और उनकी उपेक्षा की जाती रही है। आज वे उपहास और अत्याचार करने वाले मिट्टी में मिल चुके हैं और अब कोई उनका नाम भी नहीं लेता है। किन्तु उन उपेक्षित और पीड़ित महापुरुषों की स्मृति लक्ष-लक्ष मनुष्यों के हृदय में प्रकाशित है। यदि मेरे जीवन में कोई महत्वाकांक्षा रही है तो यह कि मैं अपने देश की किंचित सेवा कर सकूँ। मुझ में माता की सेवा के अतिरिक्त कोई और महत्वाकांक्षा नहीं है। आज ऐसा कौन सा राजा या रङ्क है जिसका श्री गोखले जैसा प्रभाव, मर्यादा या यश हो? और क्या वह ग़रीब नहीं हैं?" आज से ३८ वर्ष पहिले लिखे गये इस पत्र में हमारे चरितनायक का सच्चा स्वरूप जागरूक है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पूर्ण भक्ति या ज्ञान में आत्मा बोल रही हो। हम देखते हैं कि उनका सम्पूर्ण जीवन इसी त्याग एवं सेवा की आधार शिला पर समाधारित है।

गाँधीजी का प्रभाव और राजनैतिक क्षेत्र में आगमन

असहयोग का शंखनाद होने के पहिले राजेन्द्र बाबू का अधि-

कारी वर्ग तथा सर्वसाधारण में, दोनों जगह सम्मान था। इन्हीं दिनों महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका से लौट कर आए ही थे। सन् १९१७ मे चम्पारन के किसानों की दशा देखने के लिए बिहार आए। चम्पारन में सत्याग्रह हुआ। सन् १९१८ में चम्पारन एग्रेरियन ऐक्ट पास हुआ, जिसके द्वारा प्रजा की अधिकांश शिकायतें दूर हुई। अहङ्कार को सदा के लिये मिटा देने का प्रयत्न का श्रीगणेश यहीं से हुआ। राजेन्द्र बाबू इसी समय गांधी जी के साथ ही लिये और सदैव ही उनके विचारों के अनुरूप कार्य करते रहे हैं। महात्मा जी की आत्म कथा में हमारे चरितनायक के प्रति स्थान-स्थान पर हृदय-स्पर्शी टिप्पणियां भरी पड़ी हैं। यह सदैव ही पूज्य बापू के विश्वासपात्र स्तम्भों में रहे है—हालांकि इन्होने सदैव ही अपने को उनका एक तुच्छ अनुचर ही बताया है। इनके अध्यापकों ने इनके लिये ये शब्द कहे थे, राजेन्द्र बाबू उन विद्यार्थियों मे से हैं, जिन्हें अध्यापक कभी भूल नही सकते," वहां सार्वजनिक जीवन में इन्हें लोक सेवा का प्रतीक देश–वासियों का श्रद्धा तथा सत्याग्रह का सेनानी व भारतमाता का सपूत समझा जाता है। विरुद्धों का सामञ्जस्य, कोमलता एवं कठोरता का यह समन्वय, यही लोक-धर्म का सौन्दर्य है। हमारे चरित्तनायक का जीवन इसी की पूर्ति है।

हमारे चरितनायक को सेवा करने का बाल्यकाल से ही एक व्यसन सा हो गया था। राजनीति में आजाने पर तो उसने एक सजीव रूप धारण कर लिया। वह गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम में जुट गये, और उनकी प्रतिभा जागृत हुई। साथ ही उनकी संगठन शक्ति का भी परिचय मिला। वह बराबर सत्याग्रह के समर्थकों में से रहे और कई बार जेल भी गये। बार-बार जेल की यातनाओं के कारण इनका स्वास्थ एक दम नष्ट सा हो गया था और इन्हें दमा का भयंकर रोग हो गया था।

सन् १९३४ की बात है। यह जेल में थे, और इनकी बीमारी असाध्य सी समझी जा रही थी। १५ जनवरी सन् १९३४ को भारत-वर्ष में एक भयंकर भूकम्प आया। बिहार-प्रान्त पर उसका सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। लाखों आदमी बे-घरबार हो गये। उस भूकम्प के कारण बिहार-वासियों की जो दुर्दशा हुई थी, उसके स्मरण मात्र से आज भी रोमांच हो आता है! होनहार की बात इनका रोग बढ़ता देख कर सरकार ने १७ जनवरी १९३४ को इन्हें भी छोड़ दिया उन दिनों उनका शरीर एकदम गल चुका था। तरन्तु ऐसे लोक सेवी को चैन कहां। इलाज करना तो भूल गये। स्थान-स्थान पर सहायक संघ स्थापित किये। अपने नाम से एक फण्ड खोला। उसमें लाखों रुपये का चन्दा इकट्ठा किया गया। इस प्रकार महीनों तक अथक परिश्रम करके इन्होने निराशा एवं अन्धकार में पड़े हुए बिहार को बचा लिया। बस यहीं से इनकी लोक-प्रियता ने एक सजग स्वरूप धारण कर लिया, और सारे देश ने इन्हें अपना अग्रगण्य नेता माना

सन् १९३२ मे पुरी कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये परन्तु सत्याग्रह आन्दोलन के कारण वह कांग्रेस हो ही नहीं सकी। सन् १९३५ में बम्बई मे होने वाली कांग्रेस के अध्यक्ष हुए। इन्हीं की अध्यक्षता में कांग्रेस की स्वर्ण जयन्ती मनाई गई थी। बाद में सन् १९३९ में त्रिपुरी कांग्रेस के भी अध्यक्ष हुए थे। चुने तो गये थे वैसे स्व० नेताजी सुभाषचन्द्र बोस। परन्तु कांग्रेस-कार्य-कारिणी से मतभेद होने के कारण उन्हें त्याग-पत्र देना पड़ा था। तब सबने इन्हीं को उस गुरु-तर कार्य-वहन के लिये राजी किया था। आपके बारे में चम्पारन सत्याग्रह के सिलसिले में पूज्य बापू ने लिखा था कि, "अगर राजेन्द्र बाबू न होते, तो मैं एक क़दम भी नहीं चल सकता था।"

विदेश यात्रा

हमारे चरितनायक का विचार था कि विलायत जाकर बैरिस्ट्री

पास करलें। परन्तु कतिपय कारणों से नहीं जा सके। बाद में सन् १६२८ में एक मुकदमे के सिलसिले में आप इङ्गलैंड गये थे। मुकदमा खत्म होने के बाद आपने जर्मनी, फ्रांस, इटली, हालैण्ड, स्विटजरलैण्ड आदि देशों का भ्रमण किया और कई एक सम्मेलनों में भाग लिया। उन्हीं दिनों आस्ट्रिया में अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध विरोधी सम्मेलन हो रहा था। राजेन्द्र बाबू भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से उसमें शामिल हुए थे। हमारे चरित नायक विदेशों में भी अपने देश की प्रतिष्ठा, मान-मर्यादा आदि का सदैव ध्यान रखते थे। भारत की स्थिति और भारत की स्वतन्त्रता के ऊपर जब जहां अवसर प्राप्त हुआ उसके लिए इन्होंने काफी प्रचार किया।

भारत के स्वतन्त्र होते पर स्वतन्त्र भारत की विधान परिषद् के आप सर्व सम्मति से अध्यक्ष चुने गये। तथा केन्द्रीय सरकार के खाद्य मंत्री भी बनाये गये। बाद में आचार्य कृपलानी के राष्ट्रपति के पद से त्याग-पत्र देने के बाद आपने राष्ट्रपति का पद सँभाला। और इस समय विधान परिषद् तथा कांग्रेस दोनों के ही अध्यक्ष हैं। ऐसे ही श्रेष्ठ नर रत्नों के हाथों में भारत का भाग्य सुरक्षित है।

Sm. SAROJNI NAIDU

: ७ :

श्रीमती सरोजनी नायडू-भारत-कोकिला

कोकिला के सदृश स्वतन्त्रता-रूपी वसंत का संदेश संसार के कोने-कोने में पहुँचाने वाली महिला हमारे संयुक्तप्रान्त की गवर्नर सरोजिनी नायडू ही हैं।

आगे चलने के पूर्व हम अपनी चरितनायका की एक कविता उद्धृत कर देना उचित समझते हैं। इस कविता को पढ़ लेने के बाद हम सहज ही समझ जायेंगे कि उनमें हमें, विश्वनारी के, नित्यनारी के पग-पग पर दर्शन होते हैं। वह महिला हैं जिसमें मातृत्व, व्यथित और पीड़ित मातृत्व अपनी संतति को पुकारता रहता है।

"Tho' you deny the hope of all my being,
Betray my love, my sweetest dream destroy;
Yet will I stake my individual sorrow,
At the deep source of universal joy,
O Fate, in vain you hanker to control,
My frail, severe, indomitable soul."

अर्थात् "चाहे तू मुझे मेरे सम्पूर्ण जीवन की आशा से वंचित कर दे, मेरे प्रेम को छिन्न-भिन्न और मेरे मधुरतम स्वप्न को नष्ट कर दे, फिर भी मैं अपने व्यक्तिगत दुःख को विश्वनाद के गम्भीर स्रोत में

डुबाकर रहूँगी। ऐ भाग्य ! तू मेरी क्षीण, शान्त और अजेय आत्मा पर प्रभुत्त्व स्थापित करने की व्यर्थ ही चेष्टा कर रहा है।"

इस कविता में मानो इनका समस्त जीवन मुखरित है। उन्होंने संसार में विविध कर्म करते हुए, कष्ट दुःख तथा व्यथा के संसार में विचरते हुए भी भाग्य को चुनौती दी है, "किन्तु किसी तरह भी मेरी आत्मा पर विजय प्राप्त न कर सकेगा।" उन्होंने जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त कर लिया है। वे अब उसे किसी प्रकार म्लान् व मन्द होने देने के लिए तैयार नहीं हैं। विश्वानन्द में अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों को डुबा देना ही वास्तविक आनन्द का स्त्रोत है।

जन्म, बाल्यकाल तथा शिक्षा

बहुत दिन हुए तब इनके पूर्वज ब्रह्मनगर (बंगाल) से आकर हैदराबाद (दक्षिण) में बस गये थे। यहीं १३ फरवरी सन् १८७९ को सरोजिनी देवी का जन्म हुआ था। इनके पिताजी का नाम स्व० डा० अघोरनाथ जी चट्टोपाध्याय था। वह विज्ञान के अच्छे विद्वान थे तथा ब्राह्मणों में इनका अच्छा मान था। उनका अध्ययन विशाल तथा विस्तृत था, साथ ही स्वभाव अत्यन्त ही सरल और मृदुल। डा० अघोरनाथ जी विज्ञान के पुजारी थे, तथा उनमें एक वैज्ञानिक की तन्मयता स्वाभाविक थी। क्या आश्चर्य है कि ऐसे धुरन्धर विद्वान् मृदुल स्वभाव व्यक्ति तथा तन्मय अध्ययनशील पिता की पुत्री आगे चल कर संसार की इनी-गिनी कवयित्रियों में गिनी जाने लगी। सरोजनीदेवी आज संसार की प्रथम नौ अंग्रेजी में कविता करने वालों की श्रेणी में गिनी जाती हैं। इन्होंने अपने तथा अपने पिता जी के बारे में स्वयं लिखा है कि, "मेरा विचार है कि समस्त भारतवर्ष में ऐसे थोड़े ही आदमी होंगे, जो विद्वत्ता में मेरे पिता जी से बढ़े चढ़े हों। मैं समझती हूँ उनसे अधिक प्रेमास्पद थोड़े ही लोग होंगे" तथा "मेरे पिता जी में वैज्ञानिक रहस्यों को जानने की ओर

प्रबल उत्कण्ठा थी, वही मेरे हृदय में सौन्दर्यो पासना की प्रवृत्ति के रूप में विकसित हुई।"

विलायत से लौटने पर डा० अघोरनाथ जी ने निजाम कालेज की स्थापना की और शिक्षा प्रसार में लग गये। इनकी प्रबल इच्छा थी कि सरोजिनी देवी उनकी तरह विज्ञान की पण्डिता बने तथा अंग्रेजी की पूर्ण विद्वान बन जाये। फलतः अंग्रेजी सरोजिनी देवी की मातृभाषा के समान हो गई और भारतीय भाषाओं का उनका ज्ञान ही रह गया।

सरोजिनी देवी पढ़ने में बड़ी तेज़ थी। १२ वर्ष की ही अवस्था में इन्होंने मद्रास की मैट्रिक परीक्षा पास कर ली थी। इन्हीं दिनों इनके हृदय में कविता करने के भाव अंकुरित होने लगे थे। उन दिनों की बात है, जब उनकी अवस्था केवल ११ वर्ष की थी। एक दिन यह बैठी बैठी गणित का एक प्रश्न हल कर रही थीं। वह हल होता ही नहीं था। बस परेशान होकर इन्होंने सवाल हल करना तो छोड़ दिया, उसकी जगह कविता करने लगीं। १३ वर्ष की अवस्था में इन्होंने एक लम्बी कविता लिखी थी। इसका नाम 'झील की रानी' (Lady of the lake) लिखी थी। इसमें १३०० पद हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने एक नाटक भी लिखा था।

सन् १८९५ में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए यह विलायत गईं। वहां इन्होंने किंग्स कालेज (लन्दन) तथा गिर्टन (कैम्ब्रिज) में अध्ययन किया। स्वास्थ्य बिगड़ जाने से इन्होंने इटली की यात्रा की। वहां के प्राकृतिक सौंदर्य और प्रकाश से पूर्ण, दान्ते, वर्जिल आदि कवियों और कलाकारों की जन्मभूमि ने इनपर गहरा प्रभाव डाला। इस वातावरण ने इनके हृदय में एक रस भर दिया। यही रस काव्य के रूप में प्रस्फुटित होने लगा। सन् १८९८ के सितम्बर में यह विलायत से लौटकर अपने घर आगईं।

विवाह और सामाजिक जीवन में प्रवेश

विलायत से लौटने के केवल तीन महीने बाद इन्होंने एक बड़े साहस का काम किया। जाति पांति के समस्त बन्धनों को तोड़कर डाक्टर मेजर एम० जी० नायडू से विवाह कर लिया। तब से बराबर वह भारतीय नारियों तक जागरण का सन्देश पहुँचाती रहीं हैं। वह भारतवर्ष में नारी आन्दोलन की जन्मदात्री हैं। इस काम में उन्होंने अटूट धैर्य लगन तथा उत्साह के साथ काम किया है। इसी का परिणाम है कि भारतीय नारियां आज इतनी संगठित होगई हैं।

हालां कि उनकी शिक्षा-दीक्षा पाश्चात्य ढंग की हुई है, परन्तु उन्होंने सदैव ही भारतीय संस्कृति और आदर्श को अपनाया है। वह भारतीय नारियों का तनिक भी अपमान नहीं सह सकती हैं। एक बार बङ्गाल के गवर्नर ने भारतीय नारियों के प्रति कुछ अप-मान जनक शब्द कह दिये थे। इस पर हमारी चरित नायिका ने वह आन्दोलन किया कि लाट साहबको क्षमा याचना करनी पड़ीथी।

सन १९१९ में वह भारतीय होमरूल लीग डेपूटेशन की सदस्या होकर विलायत गईं। उन्होंने सेलबोर्न कमेटी के सामने स्त्रियों के मताधिकार के पक्ष में जो गवाही दी थी, वह इतनी सुन्दर थी कि लार्ड सेलबोर्न ने उसकी प्रशंसा में ये शब्द कहे थे—

"If I may be allowed to say so, it illuminates our prosoic litarature with a poetic touch"—आप लोगों की आज्ञा से मैं यह कहना चाहूँगा कि इस गवाही ने हमारे शुष्क गद्यात्मक साहित्य को कवित्वपूर्ण स्पर्श से आलोकित कर दिया है।' इसके साथ ही उनमें साम्प्रदायिकता का तनिक भी आभास नहीं है। हिन्दू और मुसलमान दोनों समाजों में उनकी समान प्रतिष्ठा है।

राजनीति में प्रवेश

पीड़ितों के प्रति सहानुभूति उनमें जन्म से थी। सन १६१५ से ही वह कांग्रेस के अधिवेशनों में भाग लेने लगी थीं। इसी सहानुभूति का दूसरा रूप था कि वह सदैव ही हिन्दू मुसलमानों में पूर्ण एक्य स्थापित करने का सुख स्वप्न देखती रही हैं। सन १६१३ में लखनऊमें होने वाले मुस्लिम लीग के अधिवेशन में उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बड़ा ही ओजस्वी भाषण दिया था। सन् १६१७ में पटना में उन्होंने कहा था कि "इस विशाल देश में मुसलमान अपना घर बनाने को आये हैं—न कि इसलिए कि लूट मार करके वे अपने घर चले जायें। वे इस देश में अपना स्थायी घर बनाने आये थे और मातृभूमि को सम्पन्न बनाने के लिये एक नई सन्तति पैदा करना ही उनका उद्देश्य था। तब वे इस भूमि के बच्चों से अलग कैसे रह सकते हैं? क्या इतिहास यही बताता है कि भूलकाल में वे हिन्दुओं से अलग रहते थे। अथवा यह बताता है कि एक बार इस देश को अपनी मातृभूमि बना लेने के बाद वे इस भूमि के बच्चे बन गये और हमारे मांस के मांस और खून के खून (बिलकुल अपने) हो गये।

सन् १६२१ में वे भारतीय स्त्रियों के मताधिकार आन्दोलन के सम्बन्ध में इङ्गलेण्ड गईं। इन दिनों इनका जीवन पूर्ण वैभव व विलासमय था। कविताओं के कारण इनका इङ्गलेण्ड के विद्वत्समाज में तो सम्मान था ही, साथ ही वह अपने वस्त्र-परिधान और कला पूर्णता के लिए भी प्रसिद्ध थीं। पश्चिमी निर्भीकता, पूर्वी रहस्यमयता तथा शालीनता से उनका जीवन ओतप्रोत था।

जब वह विलायत से लौटीं, उन दिनों अमृतसर के हत्याकाण्ड हो चुके थे। गांधीजी के नेतृत्व में भारतीय आत्मा जगमगा उठी थी। भारत के आकाश पर घटाएं छा रही थीं। असहयोग आन्दोलन

का शंखनाद कोने कोने में गुञ्जायमान था। जहाज में ही इनके हृदय में संघर्ष होने लगा था। बम्बई में उतरते उतरते इन्होंने गांधीजी को आत्मसमर्पण करने का निश्चय कर लिया। वह लिबरलों के शुष्क तर्क-युद्ध से प्रभावित न हो सकीं। गांधीजी के युद्ध में कवि की आत्मा को स्पर्श करने वाले तत्त्व विद्यमान थे। जिस नारी ने बम्बई की सड़कों पर जब्त पुस्तकें बेचकर कानून तोड़ा हो, सन् १९२० में पंजाब की घटनाओं के सिलसिले में इंग्लैण्ड में अपने भाषण में कहा कि 'my sisters were stripped naked; they were jlogged; they were outraged (मेरी बहिनें नगी की गईं, उनमें कोड़े लगाये गये तथा उनकी आबरू उतारी गई) वह देवी भला कोरे तर्क वितर्क से कैसे संतुष्ट हो सकती थी?

११ मार्च सन् १९२२ को राज-द्रोह के अभियोग में महात्मा गाँधी को ६ वर्ष की सजा हुई थी। जेल जाते समय महात्मा जी ने इनसे ये शब्द कहे थे, "I entrust the unity of India into your hands" "भारत की एकता मैं तुम्हारे हाथों सौंपता हूँ।" सरोजिनी देवी ने सिर झुकाकर बापू की थाती को स्वीकार किया। एकता की धूनी रमाकर वह सर्वत्र एकता का सन्देश सुनाती हुई देश भर में घूमती रहीं। अहमदाबाद में भाषण देते हुए उन्होंने विह्वल कण्ठ से ये शब्द कहे थे—"गाँधी जी को वे लोग पृथ्वी के अन्तिम छोर तक लेजा सकते हैं, पर उनकी मंजिल उनके देश-भाइयों के हृदय में ज्यों की त्यों अटल है—उन देश-बन्धुओं के, जो उनके अद्वितीय स्वप्नों और कार्यों के पोषक तथा उत्तराधिकारी हैं।"

इस दौड़ धूप में स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण उन्हें लङ्का जाना पड़ा। वहां भी इन्होंने अपना काम जारी रखा। 'भारतीय पुनरुत्थान' पर इनके एक व्याख्यान को सुन कर लङ्का की राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्षश्री एच० जे० सी० पेपरी के ये शब्द स्मरणीय हैं—"जिस

प्रकार श्री रवीन्द्रनाथ भारतीय पुनरुत्थान के पुरुप-कवि हैं, उसी प्रकार सरोजनी देवी उसकी नारी कवि हैं।

इस प्रकार वहां बराबर देश सेवा में लगी रहीं। प्रवासी भारतीयों की सेवा में भी इनका बड़ा हाथ रहा। यह दक्षिण अफ्रीका भी गई थीं। भारत की ओर से वहां इन्होंने यह संदेश दिया था। —"सम्भव हुआ तो भारत ब्रिटिश साम्राज्य में रहेगा और आवश्यकता हुई तो वह उससे बाहर हो जायगा। इसका निर्णय दक्षिण अफ्रीका के अधीन है। इनके ओजस्वी तथा प्रामणिक भाषणों के सन्मुख गोरों को भी भारतीयों के पक्ष के औचित्य को स्वीकार करना पड़ा था।

हमारी चरितनायका की देश सेवा के कारण उनके प्रति जनता में अपूर्व सम्मान उत्पन्न हो गया और सन १९२५ की कानपुर कांग्रेस में वह अध्यक्षा निर्वाचित हुईं। राष्ट्र ने इन्हें सर्वोच्च गौरव प्रदान करके अपने को धन्य माना। सभानेत्री के स्थान से दिया गया उनका भाषण अत्यन्त सीधा सादा तथा उनकी सर्वग्राही प्रवृत्ति एवं साधना के अनुकूल था। तनिक देखिये—"मैं एक स्त्री ठहरी, इसलिये मेरा कार्य्य क्रम सीधा सादा गृहस्ती से सम्बन्ध रखने वाला है। मैं तो केवल यह चाहती हूँ कि भारतमाता अपने घर की फिर एक बार स्वामिनी बन जाय, उसके अपार साधनों पर उसी का एक छत्र प्रभुत्व हो और आथित्य-सत्कार की सारी क्षमता भी उसी के हाथ में रहे। भारतमाता की आज्ञाकारिणी पुत्री के नाते मेरा यह कर्तव्य है कि अपनी माता का घर ठीक करूँ और उन शोचनीय झगड़ों का निबटारा कराऊँ जिनके कारण उसका पुराना संयुक्त पारिवारिक जीवन, जिसमें अनेक जातियां और धर्म सम्मिलित हैं, भंग न हो जायें। मेरा यह भी काम होगा कि उसकी निम्न से निम्न और बलवान से बलवान सन्तान को, उसकी योग्य सन्तान को और उन सब

अतिथियों और अपरिचितों को, जो उसके द्वार के भीतर मौजूद हैं, समान अधिकार प्राप्त हों।" इस वक्तव्य में हम स्पष्ट ही एक उच्च आदर्श के दर्शन करते हैं, जो भारतीय मातृत्व के सर्वथा अनुकूल हैं।

उन्होंने आगे भी अपनी मृदुल वाणी द्वारा राष्ट्र की शिथिल आत्मा में इस प्रकार आशा का सचार किया था—स्वतन्त्रता-संग्राम में भय एक मात्र अक्षम्य अपराध है और निराशा एक मात्र अक्षम्य पाप तब से आज तक बराबर इन्होंने अपने इस उपर्युक्त वाक्य का अनुसरण किया है!

गांधी जी के गिरफ्तार हो जाने के बाद धरसाना नामक डिपो पर धरना देने का नेतृत्व इन्होंने ही किया था। २० घण्टों तक लगातार, बिना अन्न-जल ग्रहण किये हुए यह उस कड़ी धूप में सड़क पर बैठी रहीं। बाद में वह गिरफ्तार करली गईं। उनकी गिरफ्तारी ने संसार को यह बता दिया कि भारतीय नारी आज किसी अन्य देश की नारियों से पीछे नहीं है। वह आज दुर्गावती, अहिल्याबाई, लक्ष्मीबाई आदि वीरांगनाओं की तरह मातृ भूमि की रक्षा के लिये सर्वस्व निछावर करने के लिये मैदान में खड़ी हैं।

इनकी काव्य-अर्चना के विषय में हम अन्यत्र संकेत कर ही चुके हैं। उसके विषय में विस्तार से लिखना अवसर के प्रतिकूल ही होगा। और न उसके लिये हमारे पास स्थान ही है। हाँ इतना अवश्य है कि उनकी कविता में स्वप्रसूता भावनाओं तथा अन्तरतम के उल्लासों की निर्झरिणी अबाध रूप से बहती हुई दिखाई देती है। हम संक्षेप में दो तीन बड़े बड़े विद्वानों की इनकी कविता के बारे में राय दे देना उचित समझते हैं।

वह आधुनिक संसार की सर्वश्रेष्ठ जीवित कवयित्री हैं—" × × and one may safely say, without much fear of cha-

llenge that she is perhaps the greatest living poetess to-day (Alftaed E. Pheres in the Japan Times.)

अपनी पुस्तक 'भारतीय स्त्रियों की चुनी रचनाएं'(Select Poems by Indian Women) की भूमिका में मार्गरेट मैकनिकोल ने लिखा है कि, "सरोजिनी की कविताओं में, सम्पूर्ण विषमताओं को मिटाकर स्वर सामञ्जस्य लाने वाला प्रवाह है।"

इनकी कविताओं में प्रेम, अध्यात्म, प्रकृति का वैभव, करुणा तथा दिव्यानन्द का सन्देश सब कुछ मौजूद है। इनकी कविताओं के तीन संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—The Golden Threshold, The Bird of Time तथा Broken wings.

स्वाभाविक रूप में हम अपनी नायडू देवी को तीन रूपों में पाते हैं—कन्या रमणी तथा माता। आज बहुत दिनों से इन्होंने कविता करना कम कर दिया है। वह बढ़कर लोक में समा गई हैं। नारी माता बन गई हैं। उनका जीवन मानों अगणित बालकों में बटकर विस्तृत हो गया है।

एक बार उनसे बहुत से लोगों ने पूछा था कि उन्होंने काव्य को क्यों छोड़ दिया; वह कोलाहलमय संसार में क्यों आ गई हैं। इस प्रश्न का उन्होंने बड़ा ही सरस एवं उपयुक्त भावना से ओतप्रोत उत्तर दिया था। उसके दो-तीन वाक्य देखिये:—संग्राम की कठिनाइयों में ही कवि का भाग्य निहित है कवि होने के लिए यह एक आवश्यक बात है कि वह भय के समय, पराजय और निराशा की घड़ियों में, स्वप्नदर्शी से कह सके कि अगर तुम सच्चा स्वप्न देख रहे हो, तो समझ लो कि सारी कठिनाइयां, सारे भय, सारी निराशाएं माया (मिथ्या) हैं, केवल आशा ही सत्य है। × × × मैं स्वप्नों की स्वप्नदर्शिनी इस कोलाहल के बाजार में खड़ी होकर तुमसे कहती हूँ—'बन्धुओ जाओ और विजय प्राप्त करो।'

आज से वर्षों पूर्व इन्होंने एक कविता लिखी थी जिसका भाव यह है:—जहां विश्व की भीड़ और कौलाहल के संघर्ष में, सज्ञान और अनौचित्य के विरुद्ध मधुर प्रेम का युद्ध चल रहा है और जहां वीर युद्ध का खड्ग लेकर जाते हैं, वहाँ संगीत का झण्डा ले जाना मेरा काम है। मेरा काम प्रकम्पित और विचलित ओठों तक शाँति तथा आशा पहुँचाना, तथा असफल तथा असहायों को शक्ति प्रदान करना है। जब शान्ति विजयिनी होगी, तब सत्य विजयी होगा और प्रेम का राज्य फैल जायगा, तब सब के पास तक आनन्द की लहरें पहुँचाना मेरा काम है।" इसी में इनके जीवन की केन्द्रीय धारा प्रकट है।

वाणी तथा हृदय के, बाह्य एवं आन्तरिक दोनों सौन्दर्यों के कारण यह अपने 'सरोजिनी' नाम को चरितार्थ करती हुई 'यथा नाम तथा गुण' वाली कहावत की सत्यता प्रकट करती हैं। आज स्वतन्त्र भारत में वह हमारे प्रान्त की गवर्नर हैं।

समाप्त